कल्पना, अन्तःप्रेरणा, अनुभूति

स्वर्णिम प्रकाश

उतरा स्वर्णिम प्रकाश मस्तिष्क में मेरे
हुए सूर्यालोकित मन के धुंधले कक्ष;
मिला एक देदीप्यमान उत्तर गुह्य लोक को प्रज्ञा के,
एक प्रदीपन शान्त और ज्वाला एक
—श्रीअरविन्द

“सूखे नारियल का रूपक” क्या है?

कहा जाता है कि जब व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेता है (इस बात को वे यहां कहते हैं), तो वह एक सूखे नारियल की तरह बन जाता है जो खोपड़ी में हिलता है, जो अन्दर मुक्त रहता है, अपने आवरण से चिपका नहीं रहता और अन्दर स्वतंत्रता से हिलता है । मैंने यही सुना है, यह किसी भी आसक्ति के न रहने का रूपक है । तुमने यह देखा होगा, जब नारियल बिलकुल सूख जाता है, तो अन्दर की गरी खोपड़ी से जुड़ी नहीं रहती; और इसलिए जब तुम उसे हिलाते हो, तो वह अन्दर हिलती है; यह पूरी तरह स्वतंत्र रहती है, वह खोपड़ी से बिलकुल मुक्त रहती है । अतः सत्ता का रूपक दिया जाता है: साधारण भौतिक चेतना नारियल की खोपड़ी है; और जब तक आत्मा पूरा रूप नहीं लेती तब तक वह चिपकी रहती है, वह लगी रहती है, वह खोपड़ी के साथ चिपकी रहती हे, और उसे अलग नहीं किया जा सकता; लेकिन जब वह अपना पूरा-पूरा रूप ले लेती हे तो वह अन्दर पूरी तरह मुक्त होती है, वह खोपड़ी के साथ चिपकी न रहकर उसके अन्दर आजादी से घूमती-फिरती है ।

—श्रीमाँ

CWM Vol. 7, p. 198

कल्पना, अन्तःप्रेरणा, अनुभूति

(श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की रचनाओं से संकलित)

श्रीअरविन्द सोसायटी,
राजस्थान राज्य समिति, जयपुर

प्रथम संस्करण २०१५

© श्रीअरविन्द एवं श्रीमाँ के समस्त लेखन तथा छायाचित्रों के प्रकाशनाधिकार श्रीअरविन्द आश्रम पुदुच्चेरी द्वारा सुरक्षित ।

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, राजस्थान राज्य समिति, जयपुर ।

मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पुदुच्चेरी

मूल्य : ५० रु.

Kalpana, Prerna, Anubhuti (Hindi)

A compilation from the writings of the Mother and Sri Aurobindo

Published by : Sri Aurobindo Society, Rajasthan State Committee, Jaipur

Printed at : Sri Aurobindo Ashram Press, Puducherry
Printed in India

Website : www.aurosociety.org

E-mail : sasrajasthan@aurosociety.org

विषय-सूची

1. श्रीमाँ की प्रार्थना ... 1
2. कल्पना : ... 2
    कल्पना की शक्ति
    कल्पना का अस्तित्व
    कल्पना का कार्य
    वैज्ञानिकों में कल्पना
    कल्पना द्वारा ईश्वर के साथ सम्पर्क
    विश्व में नयी वस्तु की वृद्धि
    कल्पना द्वारा आदर्शों को चरितार्थ करना
3. अन्तःप्रेरणा ... 11
    प्रेरित का अर्थ
    जब चाहें तब प्रेरणा
    वेद में नदियों का रूपक
    अन्तःप्रेरणा... ज्योति की पतली धारा
    अन्तःप्रेरणा की देवी मूसा स्पिरिटस
    "सावित्री" में अन्तःप्रेरणा
4. अनुभूति : ... 25
    अनुभूति के लिए अभीप्सा
    "दिव्य जीवन" के एक उद्धरण पर श्रीमाँ की टिप्पणी
    एक मात्र सारभूत वस्तु
    ठोस अनुभव
    भगवत्कृपा द्वारा अनुभूति...
    निर्वाण का अनुभव
    मन की स्वतन्त्रता...
    श्रीअरविन्द की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ
    1908 के बाद की अनुभूतियाँ
    'सावित्री' की अनुभूतियाँ
    माताजी की अनुभूतियाँ

श्रीमाँ की प्रार्थना

२६ नवंबर १९१२

मैं हर क्षण तेरी ओर कृतज्ञता-प्रकाशन के गीत कैसे न गाऊं ! हर जगह और मेरे चारों ओर हर चीज में तू अपने-आपको प्रकट करता है और मेरे अंदर तेरी इच्छा और तेरी चेतना अपने-आपको अधिकाधिक स्पष्टता से प्रकट करती है, यहां तक कि मैं लगभग पूरी तरह "मैं" और "मेरे" का स्थूल भ्रम खो बैठती हूँ । अगर उस महान् प्रकाश में, जो तुझे अभिव्यक्त करता है, कुछ छायाएं और कुछ त्रुटियां दिखायी दें, तो वे तेरे देदीप्यमान प्रेम की अद्‌भुत दीप्ति को लंबे समय तक कैसे सह सकेंगी ? तू जिस तरह से उस सत्ता को गढ़ रहा है जो "मैं" थी; आज सबेरे उसकी जो चेतना मुझे प्राप्त हुई, मोटे तौर पर उसे यूं कहा जा सकता है कि वह एक बड़ा हीरा था जिसे नियमित ज्यामिति के आकारों में तराशा गया था, जो संसक्ति, दृढ़ता, शुद्ध स्वच्छता, पारदर्शकता की दृष्टि से तो हीरा था लेकिन अपनी तीव्र, सदा प्रगतिशील जीवन की दृष्टि से तेजस्वी, कांतिमय ज्वाला था, लेकिन वह था उससे भी कुछ अधिक, उस सबसे अधिक अच्छा था; बाहरी और भीतरी प्रायः सभी संवेदनों का अतिक्रमण हो गया और जब मैं बाहरी जगत् के साथ सचेतन संपर्क की ओर लौटी तो मेरे मन में केवल वही एक छवि बनी रही ।

तू ही अनुभूति को उर्वर, तू ही जीवन को प्रगतिशील बनाता है, तू ही प्रकाश के आगे अंधकार को निमिष मात्र में विलीन हो जाने के लिए बाध्य करता है, तू ही प्रेम को उसकी सारी शक्ति प्रदान करता है, तू ही हर जगह जड़ पदार्थ को इस तीव्र और अद्‌भुत अभीप्सा में, अनंतता की इस लोकोत्तर तृषा में जगाता है ।

एकमात्र "तू" ही हो सब जगह और सदा; सार-तत्त्व में या अभिव्यक्ति में, "तेरे" सिवा कुछ भी नहीं ।

हे छाया और भ्रम-भ्रांति, घुल जाओ । हे दुःख-कष्ट, मुरझाते हुए अदृश्य हो जाओ ! हे परम प्रभो, क्या तुम नहीं हो ?

(प्रार्थना और ध्यान, पृ.११) — श्रीमाँ

कल्पना

कल्पना की शक्ति

कल्पना वास्तव में मानसिक रचनाएं बनाने की शक्ति है । जब यह शक्ति भगवान् की सेवा में लगायी जाती है तो यह केवल रचनाएं ही नहीं बनाती, अपितु सृजन भी करती है । तथापि, अवास्तविक रचना जैसी किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि प्रत्येक आकृति मानसिक स्तर पर सत्य ही होती है । उदाहरणार्थ, एक उपन्यास का सारा कथानक मानसिक स्तर पर भौतिक स्तर से स्वतंत्र रूप में विद्यमान रहता है । हममें से हर एक कुछ हद तक उपन्यासकार है और उसमें मानसिक स्तर पर आकार बनाने की क्षमता है; वास्तव में, हमारे जीवन का बहुत-सा भाग हमारी कल्पना-सृष्टि का ही मूर्त रूप है । प्रत्येक बार जब तुम किसी अस्वस्थ कल्पना में रस लेते हो, अपने भयों की रूप-रेखा बनाते हो, दुर्घटनाओं और विपत्तियों की आशंका करते हो, तब तुम अपने भावी विनाश के लिए खाई खोदते हो । इसके विपरीत, तुम्हारी कल्पना जितनी अधिक आशापूर्ण होगी, अपने लक्ष्य को पूरा करना तुम्हारे लिए उतना ही अधिक संभव होगा । कूए महोदय को इस शक्तिशाली सत्य का ज्ञान हो गया था और उन्होंने सैंकड़ों लोगों को केवल यह सिखाकर अच्छा कर दिया कि वे अपनी कष्टमुक्त स्थिति की कल्पना करें । एक बार उन्होंने एक स्त्री की घटना सुनायी जिसके बाल झड़ते जा रहे थे । उसने अपने-आपको सुझाव देना शुरू किया कि मैं दिन-पर-दिन अच्छी हो रही हूं और मेरे बाल निश्चय ही बढ़ रहे हैं । लगातार ऐसी कल्पना करने से उसके बाल सचमुच बढ़ने लगे, यहां तक कि अधिक आत्म-प्रेरणा से वह जितना चाहती थी उतने लंबे हो गये । मानसिक रचनाएं बनाने की शक्ति योग में भी अत्यंत उपयोगी है । जब भगवत्संकल्प के साथ मन का संपर्क स्थापित हो जाता है, अतिमानसिक 'सत्य' मन और उच्चतम 'प्रकाश' के मध्यवर्ती स्तरों के द्वारा अवतरित होने लगता है और यदि मन में

केवल अतिमानस में ही भागवत चेतना का आत्म निर्णायक सत्य निहित है तथा सत्यमय सृष्टि के लिए अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

पहुंचकर यह उसके अंदर रचनाएं बनाने की शक्ति देखता है तो यह सहज ही मूर्त रूप धारण कर लेता है और तुम्हारे अंदर सर्जनशील शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है । अतएव, मैं तुमसे कहती हूं कि उदास और निराश मत होओ; बल्कि ऐसा करो कि तुम्हारी कल्पना सदा आशापूर्ण और उच्चतर 'सत्य' के दबाव के प्रति सहर्ष नमनशील रहे, जिससे वह सत्य जब आये तो तुम्हें उन रचनाओं से परिपूर्ण पाये जो उसके सर्जनकारी प्रकाश को धारण करने के लिए आवश्यक है ।

कल्पना एक चाकू के समान है जो अच्छे या बुरे कामों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है । यदि तुम सदा इस विचार और भाव में निवास करो कि तुम्हारा रूपांतर होनेवाला है तो इससे तुम योग की प्रक्रिया में सहायक होगे । इसके विपरीत, यदि तुम उदास हो जाते हो और यह रोना रोते हो कि तुम योग्य नहीं हो अथवा तुम उपलब्धि को आयत्त करने में असमर्थ हो, तो तुम अपनी सत्ता को विष से भरते हो ।

इस अत्यंत महत्वपूर्ण सत्य को ध्यान में रखकर ही मैं यह कहते कभी नहीं थकती कि चाहे कुछ भी हो जाये, तुम उदास कभी मत हो । बल्कि इस अटूट आशा और विश्वास में निवास करो कि जो कार्य हम कर रहे हैं वह सफल होगा । दूसरे शब्दों में, श्रीअरविन्द में तुम्हारी श्रद्धा तुम्हारी कल्पना को निर्धारित करे । क्या ऐसी श्रद्धा में ही यह आशा और विश्वास उपस्थित नहीं है कि श्रीअरविन्द का संकल्प पूरा होकर रहेगा, कि उनके रूपांतर-कार्य का परिणाम परम विजय के सिवा और कुछ नहीं हो सकता और कि जिसे वे अतिमानसिक जगत् कहते हैं वह इसी भूतलपर उतरेगा तथा अभी और इसी जीवन में हममें चरितार्थ होगा ?

CWM Vol.3, pp.156-57 — श्रीमाँ

***

माताजी, जब हम किसी चीज की कल्पना करते हैं, तो क्या उसका अस्तित्व नहीं होता ?

जब तुम किसी चीज की कल्पना करते हो तो उसका मतलब होता है कि तुम एक

आत्मदान अथवा समर्पण की मांग उनसे की जाती है जो इस योग (पूर्ण योग) की साधना करते हैं ।

— श्रीअरविन्द

मानसिक रचना बनाते हो जो सत्य के निकट हो सकती है या सत्य से दूर हो सकती है — यह तुम्हारी रचना के गुण पर भी निर्भर है। तुम एक मानसिक रचना बनाते हो, और ऐसे लोग जिनमें ऐसी रचना शक्ति होती है कि वे जिस चीज को चरितार्थ करने योग्य समझते हैं उसे बनाने में सफल होते हैं। ऐसे लोग बहुत नहीं हैं पर कुछ हैं जरूर। वे किसी चीज की कल्पना करते हैं और उनकी रचना इतनी अच्छी तरह बनी होती है और इतनी सशक्त होती है कि चरितार्थ होने में सफल हो जाती हैं। ये सर्जक होते हैं; ये बहुत नहीं हैं पर कुछ हैं जरूर।

CWM Vol.7, p.227 — श्रीमाँ

अगर हम किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचें जो मर चुका हो।

जो मर चुका हो! अगर यह व्यक्ति मानसिक क्षेत्र में बना रहे तो तुम उसे तुरंत पा सकते हो। स्वभावतः अगर वह मानसिक क्षेत्र में नहीं है, तो उसके बारे में सोचना काफी नहीं है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि उसे खोजने के लिए चैत्य क्षेत्र में किस तरह जाया जाये। लेकिन यदि वह मानसिक क्षेत्र में ही रह गया है और तुम उसके बारे में सोचते हो तो तुम उसे तुरंत पा सकते हो, और इतना ही नहीं, बल्कि तुम उसके साथ मानसिक संपर्क बना सकते हो और उसकी सत्ता का एक प्रकारका मानसिक अंतर्दर्शन पा सकते हो।

मन के अन्दर अंतर्दर्शनकी अपनी ही क्षमता होती है और वह वही दर्शन नहीं होता जो इन आंखों से दीखता है, परंतु वह अंतर्दर्शन होता है, वह रूपों का बोध होता है। लेकिन यह कल्पना नहीं है। उसका कल्पना से कोई संबंध नहीं होता।

उदाहरण के लिए, कल्पना तब होती है जब तुम अपने आगे एक आदर्श सत्ता का चित्रण करना शुरू करते हो जिसपर तुम अपनी सभी धारणाओं को लगा देते हो, और तुम अपने-आपसे कहते हो: "इसे ऐसा होना चाहिये, इसका रूप ऐसा होना चाहिये, इसका विचार वैसा, इसका चरित्र ऐसा", जब तुम ब्योरे की सभी चीजें देखते हो और सत्ता का निर्माण करते हो। लेखक सारे समय यही करते रहते हैं

आत्म समर्पण आवश्यक रूप से क्रमिक अथवा प्रगतिशील होना चाहिये ।
— श्रीअरविन्द

क्योंकि जब वे कोई उपन्यास लिखते हैं, तो वे कल्पना करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो चीजें जीवन से लेते हैं परंतु कुछ कल्पनाशील, सर्जक होते हैं; वे एक चरित्र, एक पात्र का निर्माण करते हैं और फिर बाद में उसे अपनी किताब में जगह देते हैं। यह कल्पना करना है। उदाहरण के लिए, परिस्थितियों के एक पूरे सम्मिलन, घटनाओं की एक माला की कल्पना करना — मैं इसे अपने-आपको कहानी सुनाना कहती हूं। लेकिन इसे कागज पर लिपिबद्ध किया जा सकता है, और तब आदमी उपन्यासकार बन जाता है । बहुत भिन्न-भिन्न प्रकार के लेखक होते हैं। कुछ हर चीज की कल्पना करते हैं, कुछ जीवन से सब प्रकार के अवलोकन इकट्ठे करके उन से अपनी किताब बना लेते हैं। किताब लिखने के हजारों तरीके हैं। लेकिन निश्चय ही कुछ लेखक शुरू से अन्त तक हर चीज की कल्पना करते हैं। सब कुछ उनके लिए सिर में से आता है और वे अपनी सारी कहानी भौतिक रूप से देखी हुई किसी भी चीज के सहारे के बिना गढ़ लेते हैं। यह सचमुच कल्पना है। लेकिन जैसा कि मैं कहती हूँ, अगर वे बहुत सशक्त हैं और उनके अन्दर सृजन की काफी क्षमता है, तो यह सम्भव है कि एक-न-एक दिन ऐसा भौतिक मनुष्य आयेगा जो एक उनके सृजन को चरितार्थ करेगा। यह भी सच है।

CWM Vol.7, p.227 — श्रीमाँ

कल्पना का कार्य, उसका उपयोग क्या है?

जैसा कि मैंने कहा, अगर तुम उसका उपयोग करना जानो, तो तुम अपने लिए अपना ही आंतरिक और बाह्य जीवन बना सकते हो; तुम अपनी कल्पना द्वारा अपना अस्तित्व बना सकते हो, यदि तुम उसका उपयोग करना जानो और तुम्हारे अंदर शक्ति हो। वास्तव में यह सर्जन करने का, दुनिया में चीजों को आकार देने का प्रारंभिक तरीका है। मुझे हमेशा ऐसा लगता है कि अगर तुम्हारे अंदर कल्पना की क्षमता न हो तो तुम कोई प्रगति नहीं कर सकते। तुम्हारी कल्पना हमेशा तुम्हारे जीवन को आगे

उद्‌घाटित रहने का अर्थ है तुम्हारे अन्दर कार्य करने के लिए उनकी (श्रीमाँ की) शक्ति को पुकारना ।

— श्रीअरविन्द

बढ़ाती है। जब तुम अपने बारे में सोचते हो, तो प्रायः तुम यह कल्पना करते हो कि तुम क्या बनना चाहते हो, है न, और यह आगे बढ़ती है, फिर तुम अनुसरण करते हो, फिर वह आगे बढ़ती जाती है और तुम पीछे-पीछे चलते जाते हो। कल्पना तुम्हारे लिए उपलब्धि का मार्ग खोल देती है। जो लोग कल्पनाशील नहीं हैं उन्हें आगे बढ़ाना बहुत मुश्किल होता है; वे बस उतना ही देखते हैं जो उनकी नाक की सीध में हो, वे बस वही अनुभव करते हैं जो वे क्षण-क्षण होते हैं और ये आगे नहीं बढ़ सकते क्योंकि वे तात्कालिक चीजों से जकड़े रहते हैं।

CWM Vol.7, p.228 — श्रीमाँ

वैज्ञानिकों में कल्पना होती होगी!

बहुत-सी। अन्यथा वे किसी चीज की खोज न कर पायेंगे। वस्तुतः, जिसे कल्पना कहते हैं वह अपने-आपको उपलब्ध वस्तु से बाहर,उपलब्ध की जा सकने वाली चीजों की ओर प्रक्षिप्त करने की क्षमता है, और फिर प्रक्षेपण के द्वारा उन्हें खींच लेना है। स्पष्ट है कि तुम्हारे अंदर प्रगतिशील और प्रतिगामी कल्पनाएँ होती हैं। ऐसे लोग हैं जो हमेशा सभी संभव अनर्थों की कल्पना करते हैं, और दुर्भाग्यवश उनके पास उन्हें लाने की शक्ति भी होती है। वह एक प्रकार का ऐण्टिना है जो किसी ऐसे जगत् में जाता है जिसका अभी तक अनुभव नहीं किया गया है, वहां से किसी चीज को पकड़ कर यहां खींच लाता है। तब स्वभावतः पृथ्वी के वातावरण में यह एक वृद्धि होती है और ये चीजें अभिव्यक्ति की ओर मुड़ती हैं। यह एक ऐसा यंत्र हैं जिसे अनुशासन में रखा जा सकता है तथा मर्जी के अनुसार जिसका उपयोग किया जा सकता है; व्यक्ति उसे अनुशासन में रख सकता है, उसका निर्देशन कर सकता है, उसे निश्चित दिशा दे सकता है। यह एक ऐसी योग्यता है जिसे व्यक्ति अपने अंदर विकसित कर सकता है और उसे उपयोगी बना सकता है, यानी, उसका उपयोग निश्चित अभिप्राय के लिए कर सकता है।

CWM Vol.7, p.229 — श्रीमाँ

समर्पण उद्घाटन का सर्वोत्तम मार्ग है... ।

— श्रीअरविन्द

कल्पना, अन्तःप्रेरणा, अनुभूति

मधुर मां, क्या व्यक्ति ईश्वर की कल्पना करके उनके साथ संपर्क बना सकता है ?

निश्चय ही, अगर तुम ईश्वर की कल्पना करने में सफल हो जाओ तो तुम्हारा संपर्क बन जाता है, और बहरहाल, तुम जिस चीज की कल्पना करते हो उसके साथ संपर्क बना सकते हो। वास्तव में किसी ऐसी चीज की कल्पना करना, जिसका कहीं अस्तित्व नहीं है, असंभव है। तुम ऐसी किसी भी चीज की कल्पना नहीं कर सकते जिसका कहीं अस्तित्व नहीं है। यह संभव है कि पृथ्वी पर उसका अस्तित्व न हो, हो सकता है वह कहीं और हो, लेकिन तुम्हारे लिए किसी ऐसी चीज की कल्पना करना असंभव है जो तत्वतः विश्व में कहीं-न-कहीं मौजूद न हो; अन्यथा वह सूझती ही नहीं।

CWM Vol.7, p.229 —— श्रीमाँ

तब, मधुर मां, इसका यह अर्थ है कि सर्जित विश्व में किसी भी नयी वस्तु की वृद्धि नहीं होती ?

सर्जित विश्व में ? हां। विश्व प्रगतिशील है; हमने कहा कि निरंतर, अधिकाधिक वस्तुओं की अभिव्यक्ति होती है, लेकिन तुम्हारी कल्पना इस योग्य हो कि अभिव्यक्ति के परे जाकर किसी ऐसी चीज को खोजे जो अभिव्यक्त होनेवाली हो । हां तो, यह हो सकता है, वास्तव में ऐसा होता है —— मैं तुमसे यही कहने वाली थी कि कई सत्ताएं हैं जो इसी तरह संसार में बहुत अधिक प्रगति करवा सकती हैं, क्योंकि जिस वस्तु की अभिव्यक्ति नहीं हुई है उस वस्तु की कल्पना करने की क्षमता उनमें होती है। लेकिन ऐसी सत्ताएं अधिक नहीं हैं। किसी ऐसी चीज की कल्पना कर सकने के लिए जो विश्व में नहीं है पहले मनुष्य को अभिव्यक्त विश्व के परे जा सकना चाहिये। कई ऐसी चीजें पहले से ही हैं जिनकी कल्पना की जा सकती है।

विश्व में हमारा पार्थिव संसार भला क्या है ? एक बहुत ही छोटी चीज। पार्थिव अभिव्यक्ति में जिस चीज का अस्तित्व नहीं है उसकी कल्पना कर सकने की केवल चैत्य पुरुष ही जानता है कि समर्पण कैसे किया जाता है तथा चैत्य पुरुष प्रायः आरम्भ में आवरण के पीछे छिपा रहता है ।

—— श्रीअरविन्द

क्षमता भी अपने-आप में बहुत कठिन है, बहुत ही कठिन। कितने करोड़ों वर्षों से यह छोटी-सी पृथ्वी अपना अस्तित्व रखती आयी है? और यहां कोई भी दो चीजें एक समान नहीं हुई। यह अपने आपमें एक बड़ी बात है। अपने मन द्वारा पार्थिव वातावरण के बाहर चले जाना बहुत कठिन है; व्यक्ति जा तो सकता है, लेकिन यह है बहुत कठिन। और फिर अगर व्यक्ति केवल पार्थिव वातावरण के बाहर नहीं बल्कि वैश्व जीवन के बाहर जाना चाहे तो!

पृथ्वी की रचना से लेकर अब के पार्थिव जीवन के साथ उसकी समग्रता में केवल संपर्क साध सकना, इसका क्या अर्थ हो सकता है? और फिर इसके भी परे जाकर शुरू से लेकर अब तक के वैश्व जीवन के साथ सम्पर्क साधना .... और फिर विश्व में किसी नयी वस्तु को ला सकना, व्यक्ति को और भी अधिक परे जाना होगा। सरल नहीं है!

CWM Vol.7, p.230 — श्रीमाँ

क्या कल्पना के द्वारा हम आदर्शों को चरितार्थ कर सकते हैं?

केवल सामान्यतः हां, लगभग पूरी तरह से जो चीज लोगों के अधिकार में नहीं होती वह है उसमें लगनेवाला समय। लेकिन उदाहरण के लिए, अगर तुम्हारे अन्दर बहुत प्रबल कल्पना है और तुम अपनी कामना की सिद्धि का निर्माण कर लो, पूरे ब्योरे के साथ किसी शानदार रचना की तरह जो अपने-आपमें पूरी तरह अस्तित्व रखती हो, उसे पूरी तरह बना लो, है न, तो, विश्वास रखो कि अगर तुम काफी समय तक जी सको तो वह चीज चरितार्थ हो जायेगी! वह अगले दिन ही चरितार्थ हो सकती है, अगले क्षण चरितार्थ हो सकती है। लेकिन उसका चरितार्थ होना अवश्यंभावी है। और फिर, अगर तुम इस कल्पना-शक्ति में एक तरह की सर्जनशील प्राण-शक्ति जोड़ दो, तो तुम उसे एक बहुत सजीव शक्ति बना देते हो; और चूंकि सभी जीवंत शक्तियां चरितार्थ होने के लिए अभिमुख होती हैं, वे पार्थिव घटनाओं पर अपने-

---

समर्पण का अर्थ है व्यक्ति के अन्दर की हर चीज को निवेदित कर देना, व्यक्ति जो कुछ है और जो उसके पास है उसे भगवान को भेंट कर देना...
— श्रीअरविन्द

आपको ज्यादा जल्दी चरितार्थ करने के लिए दबाव डालती हैं, और वे चरितार्थ हो जाती हैं।

केवल, जैसा मैंने कहा, दो चीजें हैं। पहली, कामनाओं के बारे में, व्यक्तिगत परिस्थितियों के बारे में, व्यक्ति बहुत ... आग्रही या बहुत स्थिर नहीं होता, और कुछ समय के बाद जिस चीज में तुम्हारी बहुत अधिक रुचि थी वह रुचिकर नहीं रह जाती। तुम किसी और वस्तु के बारे में सोचते हो, कोई और ही इच्छा करते हो, तथा तुम कोई और ही रचना बना लेते हो। लेकिन तुमने जिस पहली चीज की कल्पना की थी वह भली-भांति रूप ले चुकती है; वह देश-काल में अपना मोड़ पूरा करके चरितार्थ हो जाती है। लेकिन तब तक तुम दूसरी कोई रचना शुरू कर देते हो क्योंकि किसी-न-किसी कारण से उस चीज में तुम्हारी रुचि नहीं रह जाती, और जब तुम अपनी पहली इच्छा की उपलब्धि के आमने-सामने होते हो, तब तक तुम दूसरी, तीसरी या चौथी का भी लंगर उठा चुके होते हो। तो इस बात से सचेतन हुए बिना कि सहज रूप से यह तो पूर्व क्रिया का फल है, तुम खीज उठते हो: "लेकिन भला क्यों, मैं इसे और नहीं चाहता, यह क्यों आयी?" लेकिन इच्छाओं के आने के बदले अगर वे आध्यात्मिक वस्तुओं के लिए अभीप्साएं हों और तुम नियमित प्रगति करते हुए लीक पर बढते चलो, तो तुमने जिसकी कल्पना की थी उसे एक दिन प्राप्त करना पूरी तरह से निश्चित है। अगर पथ पर बहुत-सी बाधाएं हों तो वह दिन कुछ दूर हो सकता है। उदाहरण के लिए अगर तुम्हारी बनायी हुई रचना धरती के वातावरण की अवस्था के लिए अब तक असंगत हो तो, उसके आविर्भाव के लिए परिस्थितियों को तैयार करने में कुछ समय लगता है। लेकिन अगर वह कोई ऐसी वस्तु है जो पृथ्वी पर कई बार चरितार्थ हो चुकी है और जिसमें बहुत सुस्पष्ट रूपांतर की आवश्यकता नहीं है, तो तुम उसे काफी जल्दी पा सकते हो, बशर्ते कि तुम उस लकीर का लगातार अनुसरण करते रहो। और अगर तुम इसके साथ श्रद्धा की उत्कटता और भागवत 'कृपा' के प्रति उस तरह का आत्म समर्पण जोड़ दो जो तुमसे हर चीज की

साधक का प्रेम भगवान के लिए होना चाहिये । जब वह इसे पूर्ण रूप से कर लेता है तभी वह दूसरों के साथ समुचित रूप से प्रेम कर सकता है ।

— श्रीअरविन्द

आशा 'उसी' से करवाता है, तो चीज आश्चर्यजनक हो सकती है; तुम चीजों को अधिकाधिक चरितार्थ होते देख सकते हो, और सबसे अधिक आश्चर्यजनक चीजें भी एक-के-बाद एक चरितार्थ हो सकती हैं। लेकिन इसके लिए शर्तें हैं जिन्हें पूरा करना होगा।

तुम्हारे आत्म-समर्पण में बहुत अधिक पवित्रता और बहुत अधिक तीव्रता होनी चाहिये, और भागवत 'कृपा' की परम प्रज्ञा में यह निरपेक्ष विश्वास होना चाहिये कि तुम्हारे लिए क्या अच्छा है।

CWM Vol.7, pp.237-38 — श्रीमाँ

क्या सभी साधकों को अपनी साधना के विकास में एक-सी अनुभूतियाँ और सिद्धियाँ मिलती हैं या हर एक की प्रकृति के अनुसार ये चीजें भिन्न होती हैं?

कुछ चीजें सब में समान होती हैं । सभी आवश्यक या तात्विक वस्तुएं संभावना के रूप में सबके लिए समान होती हैं, लेकिन हर एक अपनी प्रकृति के अनुसार जिस चीज को विकसित कर सकता है, जिस तरीके से विकसित कर सकता है, करता है ।

— श्रीमाँ

अन्तःप्रेरणा

"प्रेरित या अनुप्राणित" का अर्थ क्या है?

इसका अर्थ है कोई ऐसी चीज पाना जो तुमसे परे हो, जो तुम्हारे अंदर न हो; अपने-आपको अपनी व्यक्तिगत सचेतन सत्ता के बाहर के किसी प्रभाव की ओर खोलना।

वास्तव में, किसी को हत्या करने की प्रेरणा भी मिल सकती है। जिन देशों में हत्यारों का शिरच्छेदन किया जाता है, उनका सिर काट दिया जाता है, इससे बड़ी क्रूरतापूर्ण मृत्यु होती है जो प्राण पुरुष को बाहर फेंक देती है, उसे शरीर से बाहर निकलने के लिए विघटित होने का समय नहीं मिलता। प्राणिक सत्ता उग्र रूप में शरीर से निकालकर बाहर फेंक दी जाती है, उसके सारे आवेश उसके साथ होते हैं। साधारणतः वह जाकर वहां पर उपस्थित किसी व्यक्ति में, जो आधा भयभीत और और आधा अस्वस्थ कुतूहल से भरा होता है, अपने-आपको जमा लेती है। लोगों की यह अवस्था दरवाजा खोल देती है और यह सत्ता उसमें घुस आती है। आंकड़ों से प्रमाणित होता है कि अधिकतर युवा हत्यारों ने यह स्वीकार किया है कि इसका आवेश उन्हें तब आया था जब वे किसी हत्यारे की मृत्यु के समय उपस्थित थे। यह एक प्रेरणा थी, पर घृणित प्रकार की।

मूलतः यह किसी ऐसी चीज की ओर उन्मीलन का समय है जो तुम्हारी व्यक्तिगत चेतना में नहीं थी, जो बाहर से आती है, तुम्हारे अंदर घुस पड़ती है और तुमसे कुछ करवाती है। यही सबसे अधिक व्यापक सूत्र दिया जा सकता है।

हां, तो जब लोग कहते है:"ओह! यह तो प्रेरणा पानेवाला कवि है," तो इसका मतलब होता है, वह कहीं ऊपर से प्रेरणा पाता है और उसे विलक्षण रूप में प्रकट करता है। लेकिन कहना यह चाहिये कि उसकी प्रेरणा उच्च स्तर की है।

CWM Vol.5, p.206 — श्रीमाँ

माताजी, जब हम चाहें तब प्रेरणा क्यों नहीं आती?

साधारणतः नहीं, क्योंकि व्यक्ति अपनी सत्ता की यंत्र-रचना नहीं जानता और अपनी इच्छा के अनुसार दरवाजे नहीं खोल सकता।

यह ऐसी चीज हो जो की जा सकती है। ये उन चीजों में से हैं जो योग में सबसे पहले सिखायी जाती हैंः जब चाहो तब द्वार खोल सकना, यह ध्यान का या एकाग्रता का या अभीप्सा का परिणाम होता हैः वहीं पर द्वार खोलने के लिए इन प्रक्रियाओं का अनुसरण किया जाता है।

और साधारणतः तुम उसे जिस किसी चीज की ओर नहीं, उच्चतर चीज की ओर ही खोलने का प्रयत्न करते हो। क्योंकि दुर्भाग्यवश दूसरे प्रकार की ग्रहणशीलता तो लोगों में हमेशा ही होती है ... । एकदम एकान्त में बंद हो सकना बिलकुल असंभव है, और फिर, मेरा ख्याल है कि यह बहुत सहायक भी नहीं होता। अगर व्यक्ति अपने अंदर ही पूरी तरह बंद रहे तो प्रगति करना असंभव होगा। तब जो कुछ तुम्हारे अंदर है, तुम उसी को इधर-उधर पलट कर सजा सकोगे। जरा कल्पना करो, तुम एक गोले की तरह बंद हो, बिलकुल बंद, बाहर के साथ किसी तरह का कोई संबंध नहीं, तुम कुछ भी बाहर नहीं निकाल सकते, तुम कुछ भी नहीं पाते, तुम एकदम बंद हो — तुम्हारे अंदर चेतना के कुछ तत्व हैं, गति और स्पन्दन (तुम चाहे जो कह लो), और यह सब एक गोले में बंद है, तुम्हारी चेतना के साथ। तुम्हारा बाहरकी चीजों के साथ कोई संबन्ध नहीं, तुम केवल अपने बारे में सचेतन हो। तुम क्या कर सकते हो? ... अपने अंदर की व्यवस्था बदल लो, यह तो तुम कर सकते हो। तुम इस व्यवस्था को बदलकर बहुत कुछ कर सकते हो। लेकिन यह बस यहीं तक बंद है। यह एक प्रकार की आंतरिक प्रगति है, लेकिन तुम्हारे बाहर जो शक्तियां हैं, उनके साथ संबंध रखनेवाली सच्ची प्रगति नहीं है। तुम कुछ समय के बाद अपने-आपसे ऊब जाओगेः बार-बार अंदर के तत्वों को घुमाते, फिर घुमाते और फिर घुमाते थक जाओगे, अपने आप को बहुत ही सीमित अनुभव करोगे —

हृदय में प्रेम, भक्ति तथा समर्पण जितना विकसित होगा, साधना का विकास उतना ही द्रुत और पूर्ण होगा ।

— श्रीअरविन्द

यह बहुत सुखद नहीं है।

लेकिन सारे समय तुम अपने-आपको बाहर प्रकट करते हो और हर बार इस तरह प्रकट करने से तुम कुछ चीज अंदर ले आते हो। यह एक छिद्रिल वस्तु की तरह हैः एक शक्ति बाहर जाती है और फिर एक अंदर आती है। इस प्रकार के कंपन होते हैं। औऱ इसीलिए अपने रहने का वातावरण चुनना इतना महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रायः सारे समय तुम जो देते हो और तुम जो लेते हो उनमें एक विनिमय चलता रहता है। जो लोग अपने-आपको क्रिया-कलाप में ज्यादा बाहर फेंकते रहते हैं उन्हें मिलता भी अधिक है। लेकिन वे पाते उसी स्तर पर अपने क्रिया कलाप के स्तर पर। उदाहरण के लिए, बच्चे, जो अभी छोटे ही होते हैं, जो हमेशा घूमते-फिरते हैं, हमेशा शोर मचाते, दौड़ते और कूदते-फांदते रहते हैं (वे बहुत कम ही चुप बैठते हैं, शायद नींद का समय छोड़कर कभी नहीं, और शायद नींद में भी नहीं।) , वे बहुत ज्यादा खर्च करते हैं। सामान्यतः भौतिक और प्राणिक शक्ति खर्च की जाती है और वे भौतिक और प्राणिक शक्ति ही पाते हैं। वे जो खर्च करते हैं उसका बहुत बड़ा भाग दोबारा पा लेते हैं। इसलिए वहां, यह बहुत जरूरी है कि वे ऐसे पास -पड़ोस में हों जहां से वे अपनी शक्ति खर्च करते समय या खर्च कर चुकने पर कम-से कम उसी स्तर की चीज पायें जो उनके बराबर की हो, कम-से-कम घटिया तो न हो।

जब तुम्हारी गतिविधि में यह उदारता नहीं रह जाती, तब तुम बहुत कम पाते हो, और यह भी एक कारण है- मुख्य कारणों में से एक- कि भौतिक विकास रुक जाता है। क्योंकि तुम बचत करने लगते हो, तुम अपव्यय न करने की कोशिश करते हो। मन हस्तक्षेप करता हैः "सावधान, अपने-आपको थकाओ मत, बहुत अधिक मत करो, आदि।" मन हस्तक्षेप करता है और भौतिक ग्रहणशीलता बहुत कम होने लगती है। और आखिर, तुम बिलकुल नहीं बढ़ते — समझदारी में बढ़कर तुम बढ़ना बिलकुल बंद कर देते हो।

परंतु ग्रहणशीलता दूसरे स्तरों पर खुल जाती है। जो कामनाओं के जगत्

भागवत ज्योति, सत्य तथा उपस्थिति के प्रति चेतना का उद्घाटन योग में हमेशा एक महत्वपूर्ण चीज है ।

— श्रीअरविन्द

में रहते हैं, कभी-कभी उनकी ग्रहणशीलता इतनी बढ़ जाती है कि वे स्वयं उनके लिए और उनके आस-पास वालों के लिए अप्रिय हो उठती है और फिर ऐसे लोग हैं जो मानसिक चेतनाओं में रहते हैं, उनकी मानसिक ग्रहणशीलता बहुत बढ़ जाती है। जो लोग मानसिक सृजन करते हैं, अध्ययन करते और मानसिक क्रिया-कलाप में रहते हैं, यदि मानसिक क्रिया निरंतर चलती रहे तो वे अतिरिक्त काल तक प्रगति करते रह सकते हैं। मनुष्य का मन शारिरिक यंत्र के क्षीण होने पर भी काम करना बंद नहीं करता। हो सकता है कि वह भौतिक रूप से समझदारी में प्रकट न हो- उदाहरण के लिए यदि दिमाग में कहीं चोट हैं —— पर अपने यंत्र से स्वतन्त्र, मन को प्रगति रहने से कोई नहीं रोक सकता। यह सत्ता भौतिक सत्ता से अनंत गुना अधिक रहती है। जब व्यक्ति भौतिक दृष्टि से बूढ़ा हो जाता है तब भी यह सत्ता जवान रहती है। केवल तब जब तुम दिमाग को अच्छी स्थिति में रखने के लिए काफी सावधानी नहीं बरतते, यदि दुर्घटनाएँ हों और वहां पर चोट लग जाये तब तुम अपने-आपको व्यक्त नहीं कर सकते। लेकिन अपने-आप में मन बढ़ता रहता है। और जिनमें काफी भौतिक संतुलन है, उदाहरण के लिए, जिन्होंने किसी प्रकार की अति नहीं की है, जिन्होंने कभी अपने शरीर के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया है, जिन्होंने अधिकतर लोगों की तरह अपने-आप को विष नहीं दिया है- जिन्होंने कभी सिगरेट, शराब आदि का उपयोग नहीं किया है —— वे अपेक्षाकृत अपने मस्तिष्क को ज्यादा अच्छी स्थिति में रख सकते हैं, वे अपनी अभिव्यक्ति में भी जीवन के अंत तक प्रगति करते रह सकते हैं। यदि वे अपने अंतिम वर्षों में एक प्रकार से अपने-आपको अपने अंदर खींच लें तो वे व्यक्त करने की क्षमता को खो सकते हैं। लेकिन मन प्रगति करता जाता है।

प्राण स्वभाव से ही अमर है। लेकिन वह सुव्यवस्थित नहीं है और अपनी अवस्था में बहुत अधिक उत्तेजित विरोधी आवेशों और आवेगों से भरा रहता है और इन सबके द्वारा वह अपने आपको नष्ट कर लेता है। अन्यथा तत्व जीते रहते हैं। कामना, आवेग बहुत ज्यादा सजीव वस्तुएं हैं और कामना बहुत ज्यादा लंबे समय

... हमेशा यह अनुभव करो कि श्रीमाँ की शक्ति ही कार्य कर रही है और तुम एक माध्यम या एक यंत्र मात्र हो ।

— श्रीअरविन्द

तक उस व्यक्ति से स्वतंत्र होकर भी जी सकती है जो... उन्हें झेलता है, मुझे कहना चाहिये, जो कामना और आवेग को पैदा नहीं करता, बल्कि झेलता है, क्योंकि ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें व्यक्ति झेलता है, जो बाहर से उस तूफान की तरह घुस आती हैं जो तुम्हें पकड़ लेता और उड़ा ले जाता है, जब तक कि तुम अपने-आपको इस तरह बिलकुल शांत, बिलकुल स्थिर बिलकुल अचंचल न रख सको, मानों तुम अपनी सत्ता में किसी अचंचल ठोस वस्तु से चिपके हुऐ हो। जब तूफान आना शुरू करे तो उसे ऊपर से चाले जाने दो — वह आता है, लेकिन तुम हिलो भी मत, अपने-आपको हिलने-डुलने या कांपने मत दो, एकदम स्थिर बने रहो, यह जानते हुए कि ये गुजरते हुए तूफान हैं। और जब तूफान आकर चला जाये तब तुम गहरी सांस ले सकते हो और अपना साधारण संतुलन वापिस ला सकते हो। इसमें कम-से-कम हानि हुई है। इस प्रकार के मामलों में, साधारणतः, अंत में चीजें अच्छा रूप ही लेती हैं।

CWM Vol.5, pp.207-09 — श्रीमाँ

जबतक व्यक्ति मन की इस पूर्ण अचंचलता को सुरक्षित रख सकता है तब तक प्रेरणा पूर्णतया विशुद्ध रहती है, — वह विशुद्ध रूप में ही आती है । यदि व्यक्ति इसे ग्रहण कर सके और बोलते समय इसे अपने पास ही रखे तो जो शब्द बाहर निकलेंगे वे मिश्रित नहीं होंगे, विशुद्ध ही होंगे ।

— श्रीमाँ

वेद में अन्तःप्रेरणा के लिए समुद्रों और नदियोंका रूपक

मधुच्छन्दस्के तीसरे सूक्तकी वे तीन ऋचाएँ जिनमें सरस्वतीका आवाहन किया गया हैं इस प्रकार हैं —

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ।।
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती।।
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति।।

प्रथम दो ऋचाओंका आशय पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है जब हम यह जान लेते हैं कि सरस्वती सत्य की वह शक्ति है जिसे हम अन्तःप्रेरणा कहते हैं। सत्यसे आनेवाली अन्तःप्रेरणा हमें संपूर्ण मिथ्यात्वसे छुड़ाकर पवित्र कर देती है (पावका), क्योंकि भारतीय विचारके अनुसार सब पाप केवल मिथ्यापन ही हैं, मिथ्या रूप से प्रेरित भाव, मिथ्या रूपसे संचालित संकल्प और क्रिया ही हैं। जीवनका और हमारे अपने-आपका केन्द्रभूत विचार, जिसको लेकर हम चलते हैं, एक मिथ्यात्व है और वह अन्य सबको भी मिथ्यारूप दे देता है। सत्य हमारे अंदर आता है एक प्रकाश, एक वाणीके रूपमें, और वह आकर हमारे विचारको बदलनेके लिए बाधित कर देता है, हमारे अपने विषयमें और जो कुछ हमारे चारों ओर है उसके विषयमें एक नवीन विवेक-दृष्टि ला देता है। विचारका सत्य दर्शन (vision) के सत्यको रचता है, दर्शन का सत्य हमारे अंदर सत्ताके सत्यका निर्माण करता है और सत्ताके सत्य (सत्यम्) में से स्वभावतः भावनाका, संकल्पका और क्रियाका सत्य प्रवाहित होता

अहंकार, राजस तथा कामना से मुक्ति के संकल्प के बिना, जो अज्ञान के मोहर हैं, कर्मयोग नहीं किया जा सकता ।

— श्रीअरविन्द

है। यह है वास्तवमें वेदका केन्द्रभूत विचार।

सरस्वती, अन्तःप्रेरणा, प्रकाशमय समृद्धताओंसे भरपूर है (वाजेभिर्वाजिनीवती), विचारकी संपत्तिसे ऐश्वर्यवती (धियावसुः) है। वह यज्ञको धारण करती है, देवके प्रति दी गयी मर्त्य जीवकी क्रियाओंकी हविको धारण करती है, एक तो इस प्रकार कि वह मनुष्यकी चेतनाको जागृत कर देती है (चेतन्ती सुमतीनाम्), जिससे वह चेतना भावना की समुचित अवस्थाओंको और विचारकी समुचित गतियोंको पा लेती है, जो अवस्थाएँ और गतियाँ उस सत्यके अनुरूप होती हैं जहांसे सरस्वती अपने प्रकाशोंको उंडेला करती है और दूसरे इस प्रकार कि वह मनुष्यकी इस चेतनाके अंदर उन सत्योंके उदय होनेको प्रेरित कर देती है (चोदयित्री सूनृतानाम्), जो वैदिक ऋषियोंके अनुसार जीवन और सत्ताको असत्य, निर्बलता और सीमा से छुड़ा देते हैं और उसके लिए **परम सुख**के द्वारोंको खोल देते हैं।

वेद रहस्य, पृ.१४५ (पूर्वार्ध) — श्रीअरविन्द

विचार और सूत्र पर श्रीमाँ की टिप्पणी

२- अन्तःप्रेरणा बृहत् तथा शाश्वत ज्ञानसे उछलती हुई चमचमाती ज्योतिकी एक अत्यंत पतली धारा है। बुद्धि जितनी पूर्णताके साथ इंद्रियोंके ज्ञानको पार कर जाती है उससे भी कहीं अधिक पूर्णताके साथ यह बुद्धिको पार कर जाती है।

ऐसे अनेक प्रश्न पूछे गये हैं, जैसे, "श्रीअरविन्दने भला ऐसा क्यों कहा है?"

उत्तरमें मैं कह सकती हूं: "उन्होंने ऐसा इसलिए कहा है कि उन्होंने वैसा ही देखा है।" परन्तु आरंभमें हमें एक बात जान लेनी चाहिये; श्रीअरविन्दने ये परिभाषाएं एक विरोधाभासात्मक रूपमें दी हैं ताकि हम विचार करनेके लिए बाध्य

मैं अत्यन्त निश्चित रूप से तुम्हारे साथ रहती हूँ और जो सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं वे मुझे देख सकते हैं ।

— श्रीमाँ

हों।

कोषोंमें दी गयी परिभाषाएं इन शब्दोंकी सामान्य व्याख्याएं हैं, साधारण अर्थ है जो तुम्हें विचार करनेके लिए बाध्य नहीं करते। परन्तु श्रीअरविन्द जो कुछ कहते हैं वह रूढ़िगत धारणाको तोड़नेके उद्देश्यसे कहते हैं ताकि तुम एक गंभीरतर सत्य का स्पर्श पा सको। इस तरह बहुत-से प्रश्न यों ही छंट जाते हैं।

हमारी कोशिश होनी चाहिये उस गंभीरतर ज्ञानको, उस गंभीरतर सत्यको खोज निकालनेकी जिसे श्रीअरविन्द ऐसे ढंगसे व्यक्त करते हैं जो शब्दोंकी परिभाषा देनेकी प्रचलित रीति नहीं है।

अब मैं कुछ प्रश्नोंका उत्तर दूंगी। उनमेंसे एक, सबसे पहला, मुझे अच्छा लगा क्योंकि वह एक विचारशील मनके द्वारा पूछा गया है। वह प्रश्न ज्ञान शब्दके बारेमें पूछा गया है और श्रीअरविन्दने जिस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग इस सूत्रमें किया है तथा पिछले सप्ताह पढ़े गये सूत्र में जिस अर्थमें किया है, उन दोनोंमें तुलना की गयी है।

पिछले सप्ताह पढ़े गये सूत्रमें जब श्रीअरविन्द, यदि ऐसा कहा जा सके, ज्ञान तथा 'प्रज्ञा' में विरोध दिखाते हैं तब वह उस ज्ञानकी बात कहते हैं जिसे सामान्य मानव चेतना काममें लाती है, जो ज्ञान प्रयत्न तथा मानसिक विकासके द्वारा प्राप्त किया जाता है; जब कि यहां, उसके विपरीत, जिस ज्ञानका वह जिक्र करते हैं वह है यथार्थ ज्ञान, अतिमानसिक भागवत ज्ञान, तादात्म्यजनित ज्ञान। और, साथ ही,इसी कारण यहां वह उसे "बृहत् तथा शाश्वत" बतलाते हैं, जो स्पष्ट रूपमें यह निर्देश करता है कि यह ठीक वैसा ही मानव ज्ञान नहीं है जैसा कि हम उसे समझनेके आदी है।

बहुत-से लोगोंने पूछा है कि श्रीअरविन्दने यह क्यों कहा है कि धारा "अत्यन्त पतली" है। एक स्पष्ट रूपका निर्माण करनेके लिए, दिव्य, अतिमानसिक 'ज्ञान'की इस विशालता, इस अन्तःप्रेरणा के अनन्त मूलस्त्रोत तथा उसका जो कुछ अंश मानव मन हृदयंगम और ग्रहण कर सकता है उन दोनोंके बीच एक सुस्पष्ट

हमेशा, ऐसा आचरण करो मानों श्रीमाँ तुम्हें देख रही हैं, क्योंकि वे सचमुच हमेशा विद्यमान रहती हैं ।

— **श्रीअरविन्द**

विरोध दिखलानेके लिए यह एक बहुत सार्थक बिम्ब है। जब कोई उन लोकोंके सम्पर्कमें रहता है तब भी उसे उनका जितना बोध प्राप्त होता है वह बहुत थोड़ा, पतला होता है; वह एक अत्यन्त क्षुद्र सोतेके समान अथवा कुछ टपकती हुई बूंदों-सा होता है, और ये बूंदें अपने-आपमें इतनी पवित्र, इतनी चमकीली, इतनी पूर्ण होती हैं कि वे तुम्हें एक अद्‌भुत अन्तःप्रेरणाका बोध देती हैं, ऐसी धारणा करा देती हैं कि तुमने असीम-अनन्त क्षेत्रोंको छू लिया है, तथा तुम सामान्य मानवीय अवस्थासे ऊपर बहुत ऊँचे उठ आये हो — और फिर भी जो कुछ देखना बाकी है उसकी तुलनामें यह कुछ भी नहीं है।

किसीने यह भी पूछा है कि क्या चैत्य पुरुष अथवा चैत्य चेतना ही वह माध्यम है जिसके द्वारा अन्तःप्रेरणा आती है।

साधारणतः हां। उच्चतर लोकोंके साथ जो हमारा पहला संपर्क होता है वह चैत्य संपर्क होता है। अवश्य ही, आंतरिक चैत्य उद्‌घाटन होनेसे पहले अन्तःप्रेरणा पाना दुष्कर है। किसी विशेष प्रकारसे तथा किसी विशेष अवस्थामें, भागवत कृपाके रूपमें अन्तःप्रेरणा आ सकती है, पर सच्चा संपर्क तो चैत्य पुरुषके द्वारा ही प्राप्त होता है, क्योंकि चैत्य चेतना वह माध्यम है जो भागवत 'सत्य' के साथ सबसे अधिक संबद्ध है।

बादमें, जब कोई मानसिक चेतनासे निकलकर मनसे भी परे, उच्चतर मनसे भी परे, किसी उच्चतर चेतना में प्रवेश कर जाता है और 'अधिमानस' के क्षेत्रों के भीतरसे होकर 'अतिमानस' के क्षेत्रोंकी ओर खुल जाता है तब वह सीधी अन्तःप्रेरणाएं ग्रहण कर सकता है। और स्वभावतः, उस समय, वे शीघ्रतासे बार-बार आती हैं, यदि हम ऐसा कह सकें तो, वे अधिक सघन, अधिक पूर्ण होती हैं। फिर आता है एक ऐसा समय जब हम अपनी इच्छाके अनुसार अन्तःप्रेरणा पा सकते हैं । पर यह तो स्पष्ट है कि यह अवस्था एक अत्यधिक आन्तरिक विकासकी अपेक्षा रखती है।

... तुम्हारे और मेरे बीच एक विशेष व्यक्तिगत सम्बन्ध है, उन सबके बीच जो श्रीअरविन्द तथा मेरी ओर उन्मुख हैं...

— श्रीमाँ

मनसे बहुत ऊपरके क्षेत्रोंसे आनेवाली अन्तःप्रेरणा, जैसा कि हम अभी कह चुके हैं, मूल्य और गुणमें उस सर्वोत्तम चीजको भी अतिक्रम कर जाती है जिसे मन और अधिक ऊँचाईसे उत्पन्न कर सकता है, जैसे कि बुद्धि। निस्संदेह, तर्क-बुद्धि मनुष्यकी मानसिक क्रियाके शिखरपर है; वह इन्द्रियों की सहायतासे प्राप्त ज्ञानकी आलोचना कर सकती है, उसे संयत कर सकती है। बहुधा ऐसा कहा गया है कि इन्द्रियां ज्ञान-प्राप्तिके नितान्त दोषपूर्ण माध्यम हैं, वे वस्तुओंको ठीक वैसी ही नहीं देख सकतीं जैसी कि वे हैं, और वे जो सूचनाएं देती हैं वे सतही तथा बहुधा भ्रान्तिमूलक होती हैं। मनुष्यकी तर्क-बुद्धि जब पूर्णतः विकसित हो जाती है तब वह इस बातको जान जाती है और इन्द्रियोंके ज्ञानपर आस्था नहीं रखती। जब मनुष्य तर्क-बुद्धिसे नीचेके स्तरमें होता है, यदि ऐसा कहा जा सके तो, केवल तभी वह विश्वास करता है कि जो कुछ वह देखता है, जो कुछ वह सुनता है, जो कुछ वह छूता है, वह सब बिलकुल सत्य है। ज्यों ही वह उच्चतर तर्क-बुद्धिके क्षेत्रमें उन्नीत हो जाता है त्यों ही वह समझ जाता है कि ये सभी धारणाएं प्रायः सारतः मिथ्या हैं और वह किसी भी प्रकार उन्हें अपना आधार नहीं बना सकता। परन्तु जो ज्ञान मनुष्यको उस अतिमानसिक या भागवत स्तरसे प्राप्त होता है वह, बुद्धि जो कुछ धारणा बना सकती है या जो कुछ समझ सकती है, उस सबको अतिक्रम कर जाता है, कम-से-कम उसी अनुपातमें जिस अनुपातमें तर्क-बुद्धि इन्द्रियोंके ज्ञानको अतिक्रम कर जाती है।

कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो एक व्यावहारिक विषयसे संबंधित हैं: "अन्तःप्रेरणा प्राप्त करनेकी शक्तिको किस प्रकार विकसित किया जाये? अन्तःप्रेरणा प्राप्त करनेकी शर्तें क्या हैं? क्या उसे निरन्तर प्राप्त करते रहना संभव है?"

मैं इन प्रश्नोंका उत्तर पहले ही दे चुकी हूं। जब मनुष्य अतिमानसिक क्षेत्रोंकी ओर अपने-आपको खोलता है तब वह उन अवस्थाओंमें पहुँच जाता है जहां वह निरन्तर अन्तःप्रेरणा प्राप्त कर सकता है। तब-तक, सर्वोत्तम उपाय है यथासंभव

यदि दुर्भावना अथवा जुगुप्सा है तब काली आ सकती है और दण्ड दे सकती है, किन्तु वह ऐसा हमेशा प्रेम के साथ करती है ।

— श्रीमाँ

अपने मनको निश्चल-नीरव बनाना, उसे ऊपरकी ओर मोड़ना तथा एक निश्चल-नीरव और सजग ग्रहणशीलताकी स्थितिमें बने रहना। मनुष्य अपने मनमें जितनी निश्चल-नीरव और पूर्ण शांति स्थापित कर सकेगा उतनी ही अधिक अंतःप्रेरणाएं प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेगा।

किसीने यह भी पूछा है कि क्या अंतःप्रेरणाएं कई प्रकारकी होती हैं। अपने मूलमें, नहीं। वे सर्वदा ऐसी चीजें होती हैं जो विशुद्ध 'ज्ञान' के क्षेत्रसे उतरती हैं और मनुष्यके सबसे अधिक ग्रहणशील, उन्हें प्राप्त करनेके लिए सबसे उपयुक्त भागमें प्रवेश करती हैं; परंतु ये प्रेरणाएं कर्मके विभिन्न क्षेत्रोंमें क्रियाशील हो सकती हैं : ये विशुद्ध ज्ञानकी अंतःप्रेरणाएं हो सकती हैं। ये प्रगति के प्रयास में सहायता देनेवाली अंतःप्रेरणाएं भी हो सकती हैं, और ये किन्हीं कार्योंकी परिपूर्तिके लिए आनेवाली, किसी व्यावहारिक और बाह्य सिद्धिमें सहायक होनेवाली अंतःप्रेरणाएं भी हो सकती हैं। परंतु यहां अंतःप्रेरणाके प्रकार-भेदका प्रश्न उतना नहीं है जितना इस बातका कि लोग उसका प्रयोग किस प्रकार करते हैं — अंतःप्रेरणा सर्वदा ज्योति और सत्यकी एक बूंदकी तरह होती है जो मानव चेतनाके अंदर प्रविष्ट होनेमें सफल होती है।

मानव चेतना इस बूंदका क्या उपयोग करेगी — यह निर्भर करता है मनोभाव, आवश्यकता, अवसर तथा परिस्थितिके ऊपर; इनसे अंतःप्रेरणा के मूल स्वभावमें कोई अंतर नहीं पड़ता, पर व्यावहारिक उपयोगमें, मनुष्य किस काममें उसे प्रयुक्त करता है, इसमें अंतर आ जाता है।

मातृवाणी :१०: पृ.५-८ — श्रीमाँ

***

'सरस्वती' का सम्बन्ध न केवल अन्य नदियों के साथ है बल्कि अन्य देवियों के साथ भी है जो आध्यात्मिक प्रतीक हैं विशेष कर 'भारती' और इला के साथ । पौराणिक पूजा-पाठों में सरस्वती वाणी की, विद्या की और कविता की देवी है और 'भारती' उसके नामों में से ही एक है, पर वेद में 'भारती' और सरस्वती भिन्न-भिन्न देवियाँ हैं ।

वेद रहस्य, पृ.139 — श्रीअरविन्द

मूसा स्पिरिटस
(आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा की देवी)

जिस प्रकार भारतीय संस्कृति में कला, काव्य, साहित्य की प्रेरणा देनेवाली शक्ति को हमलोग सरस्वती के नाम से जानते हैं, उसी प्रकार यूनान की प्राचीन संस्कृति में इसी शक्ति को म्यूज के नाम से संबोधित किया जाता है। उसी देवी का एक पक्ष है आध्यात्मिक प्रेरक शक्ति मूसा स्पिरिटस। उसी शक्ति को सम्बोधित है श्रीअरविन्द की यह कविता।

हे वाणी तू प्रच्छन्न है, उर्ध्व अनल में
    युगों - युगों तक किया विलम्बन जिसने;
अवतरण कर, आनन्दमग्न निज धवल कामना से नीचे,
    स्वर्ण - शाश्वतताओं से होकर भरती हुई कुदानें।

प्रकृति के गर्त्त में हमारी, कर तू अवरोहण
    हे दिशाओं का स्वर ! ज्योति का आवाहन !
निश्चेतना की तंद्रा का, कर तू हनन
    अदृश्य ऊँचाई की भाव-समाधि का भंजन।

मानव मन की संदिग्ध दीप्ति,
    असंगत विचारों की भीड़ के बंजर में इसके;
तेरे अपने पर्वतरेखीय महाकाव्य की रच दे उत्कृति,
    गहन आर्ष गुफाओं में गूंजे मन्त्र जिसके।

तेरे रंगीन पंखों के गीतों को दे मंडराने खग के सदृश
    मेरे हृदय के सागर की लहरों के ऊपर
तेरी अग्निल वाणी से दृष्टि में कर दे संस्पर्श
        उस दृष्टिहीन देव की जो है करता निवास मेरे अन्दर

कल्पना, अन्तःप्रेरणा, अनुभूति

हे नीरवता की अन्तःप्रेरणा-शक्ति, बना दे विशाल
अथाह निस्तब्धता मेरी तेरी वाणी जो करती श्रवण
मेरी आत्मा के मूक आकाशों में जाग
गरुड़ तेरी शक्ति के जहाँ, हैं होते प्रज्ज्वलित प्रसन्न

बाहर, मेरे मन व इसकी बत्ती की लपटों से कर दे ज्वलित
ज्वलित उन सूर्यों को जो होते नहीं कभी अस्त
देवदूत-तारकों को, उनकी पुकार को मेरे श्रवणहित
औ' विविध रूपों को ईश्वरों के, मेरी नग्न आँखों के दर्शनार्थ

लघु व्यथित प्राणमय पुरुष को, मेरे अन्तर के
हटा देने दे सुप्त आत्मा से अपना आवरण
पुण्य औऱ पाप की व्याघ्रधारियाँ अपने
कोलाहल अपने, तड़क भड़क, दुःख-सन्ताप की सहन

कर दे शान्त समस्त, समस्त कर दे स्वाधीन
मेरे हृदय की धड़कनों को दे मापने प्रभु के पदचाप
कालातीत अनन्तता से करें जब वे आगमन
उसकी भाव विह्वला में करने निर्मित निज ज्वलन्त आवास

मेरे प्राण के तारों से बुन दे उनके दिवसों का छन्द
उनकी प्रशान्त पावन उषाओं का, ऊर्जा के मध्याह्नों का काव्य
बना दे मेरे कर्मों को उनके रथ की दौड़ का मार्ग प्रशस्त
मेरे विचारों को उनके महाश्वों की चाल की पदचाप

कलेक्टेड पोएम्स पृ.५८९ — श्रीअरविन्द

***

'सावित्री' महाकाव्य में अन्तःप्रेरणा

प्रायः ही अपने तड़ित् कदमों के साथ अन्तःप्रेरणा -
सर्वद्रष्टा शिखरों से एक अकस्मात् सन्देश-वाहिनी
उनके मन की निःशब्द गलियारों को करती हुई पार
ले आती रहस्यमय वस्तुओं का अपना लयबद्ध संवेद
'सावित्री', पृ.३८ — श्रीअरविन्द

***

प्रेरणा की देवी ने मर्त्य के मर्म में किया प्रवेश
भविष्य सूचक विचार का बनाया अपना परीक्षण-स्थल
और पैगम्बरी वाक् का गर्भगृह
औ, बैठ गई मन की त्रिपादिका के आसन पर;
उर्ध्व में समस्त का हो गया विस्तार, नीचे जगमगा उठा सब।
अन्धकार के केन्द्र में उसने किया खनन ज्योति का कूप
अज्ञात गहराइयों पर कर दिया आरोपित रूप एक
अकथित विराटताओं को दी एक जीवन्त आवाज
और महत् तटहीन, स्वरहीन, तारकहीन विशालताओं से होती,
रहस्योद्‌घाटक विचारों के अंशों को अनिर्वचनीय की
नीरवता से काटकर ले आई धरती की ओर ।
'सावित्री', पृ.४१ — श्रीअरविन्द

***

हम सबके लिए यहाँ केवल एक ही चीज महत्वपूर्ण है । हम सब भगवान के लिए अभीप्सा करते हैं, भगवान के लिए जीते हैं, भगवान के लिए कार्य करते हैं ।

— श्रीमाँ

अनुभूति

आप आध्यात्मिक अनुभूति की बात कहती हैं। अनुभूति क्या है और उसे कैसे पाया जा सकता है?

वह कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें तुम्हारी वर्तमान चेतना से ज्यादा ऊंची चेतना के संपर्क में ला देती है। तुम्हें अपने बारे में एक प्रकार की अनुभूति होती है, तुम्हें उसका भान भी नहीं होता, तुम्हारे लिए यह तुम्हारी साधारण अवस्था है। अगर सहसा तुम्हें अपने अंदर किसी बहुत ही भिन्न और बहुत श्रेष्ठ चीज की अनुभूति हो, वह चाहे कुछ क्यों न हो, तो यह आध्यात्मिक अनुभूति होगी। तुम उसे मानसिक विचार का रूप दे भी सकते हो और नहीं भी दे सकते, तुम उसे अपने-आपको समझा सकते हो और नहीं भी समझा सकते, यह टिक भी सकती है और नहीं भी टिक सकती, क्षणिक हो सकती है। लेकिन जब चेतना में यह तात्त्विक सामान्य चेतना से बहुत ... उच्चतर, स्पष्टतर और अधिक पवित्र हो, तो कहा जा सकता है कि यह आध्यात्मिक अनुभूति है; इसका मतलब यह है कि अलग-अलग हजारों चीजें हैं जिन्हें आध्यात्मिक अनुभूति कहा जा सकता है।

क्या हमें आध्यात्मिक अनुभूति पाने के लिए अभीप्सा करनी चाहिये?

मेरा ख्याल है कि आध्यात्मिक अनुभूति के लिए अभीप्सा करने की अपेक्षा ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण है प्रगति के लिए या अधिक सचेतन होने के लिए या ज्यादा अच्छा बनने या ज्यादा अच्छा करने के लिए अभीप्सा करना;क्योंकि हो सकता है कि वह (आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए अभीप्सा) न्यूनाधिक काल्पनिक और ऐसी मिथ्या अनुभूतियों के लिए या प्राणिक गतिविधियों के लिए द्वार खोल दे जो उच्चतर चीजों का रूप धर कर आती हैं। तुम अनुभूति के लिए अभीप्सा के द्वारा अपने-आपको धोखा दे सकते हो। वास्तव में, अनुभूति को सहज रूप में आंतरिक प्रगति के परिणामस्वरूप आना चाहिये, लेकिन अपने ही लिए या अपने-आप नहीं।

***

आध्यात्मिक उपलब्धि का खुला रास्ता

"आंतरिक सत्ता को खोलने के प्रयास में प्रकृति ने चार मुख्य दिशाओं का अनुसरण किया है, —— धर्म, गुह्य विद्या, आध्यात्मिक विचार और आंतरिक आध्यात्मिक उपलब्धि और अनुभूति। इनमें पहली तीन उस तरफ जानेवाली गलियां हैं और चौथी दिशा ही वहां प्रवेश पाने का खुला रास्ता है। इन चारों शक्तियों ने एक साथ कभी कम या ज्यादा संबंध रखते हुए, कभी बदलते हुए सहयोग, कभी एक-दूसरे का खंडन करते हुए और कभी एकदम स्वतंत्र रूप में काम किया है। धर्म ने अपने कर्मकांड, अनुष्ठान और संस्कारों में गुह्य तत्त्व स्वीकार किया है, उसने आध्यात्मिक चिंतन का सहारा लिया है। उसने कभी उससे मत या धर्मशास्त्र को प्राप्त किया है, कभी उसके सहायक आध्यात्मिक दर्शन को पाया है। इसमें पहली विधि सामान्यतः पश्चिम की है और दूसरी पूर्व की। लेकिन आध्यात्मिक अनुभूति ही धर्म का अंतिम लक्ष्य और उपलब्धि, उसका आकाश औऱ शिखर है। लेकिन कभी-कभी धर्म ने गुह्य विद्या का निषेध भी किया और अपने गुह्य तत्त्व को कम-से-कम कर दिया है। उसने दार्शनिक मन को शुद्ध बौद्धिक विदेशी मानकर परे हटा दिया है और अपने पूरे भार के साथ मत, धार्मिक आग्रह, धार्मिक भावावेग, पार्थिव उत्साह और नैतिक आचरण का सहारा लिया है; उसने आध्यात्मिक उपलब्धि और अनुभूति को कम-से-कम कर दिया है या एकदम हटा दिया है। गुह्यवादने कभी-कभी आध्यात्मिक उद्देश्य को अपना लक्ष्य बनाया है और गुह्यज्ञान और अनुभूति को उसका एक मार्ग बनाया है और एक प्रकार के गुह्य दर्शन की रचना की है लेकिन अधिकतर उसने आध्यात्मिक दृश्यों के बिना ही अपने-आपको गुह्यज्ञान और अभ्यासों तक ही सीमित रखा है। वह इन्द्रजाल या केवल जादूगरी की ओर मुड़ गया और पैशाचिक आचरण तक जा पहुंचा। आध्यात्मिक दर्शन प्रायः ही दर्शन की सहायता लेता रहा है और उसे अपना सहारा या अनुभूति का मार्ग मानता रहा है। वह उपलब्धि और अनुभूति का परिणाम

तुम्हारे हृदय की नीरवता में ही भगवान तुमसे बात करेंगे, तुम्हें मार्ग दिखायेंगे तथा लक्ष्य की ओर ले जायेंगे ।

—— श्रीमाँ

रहा है या उसने ऐसी रचनाएं की हैं जो वहां तक पहुंचने के साधन हों। लेकिन उसने धर्म की सहायता या बाधा का पूरा परित्याग किया है और अपने ही बल पर आगे चला है। वह या तो मानसिक ज्ञान से संतुष्ट रहा है या उसने विश्वास के साथ अनुभव और प्रभावशाली साधना का रास्ता ढूंढ लिया है। आध्यात्मिक अनुभूति ने इन तीनों साधनों का आरंभ-बिन्दु के रूप में उपयोग किया है लेकिन उसने उन सबको भी त्यागकर शुद्ध रूप से अपने ही बल का आश्रय लिया है। उसने गुह्य ज्ञान और शक्तियों को भयानक प्रलोभन और उलझने वाली बाधाएं मानकर दूर रखा। उसने केवल आत्मा के शुद्ध सत्य की खोज की और दर्शन को उठाकर रख दिया। उसकी जगह वह हृदय के उत्साह और एक आंतरिक रहस्यमय अध्यात्मीकरण के द्वारा अपने लक्ष्य पर पहुंचती है। वह धार्मिक मतों, पूजा, आचार-व्यवहार आदि की निचली कोटि या पहली भूमिका मानकर, इन सब सहारों को छोड़कर, सब जालों को उतारकर आध्यात्मिक परमार्थ तत्त्व के शुद्ध संपर्क तक जा पहुंची है। ये सब विभिन्नताएं आवश्यक थीं। प्रकृति के विकासात्मक प्रयास ने अपना सच्चा और संपूर्ण मार्ग पाने के लिए और परम चेतना और पूर्ण ज्ञान पाने के लिए, अपना सच्चा और संपूर्ण मार्ग खोज निकालने के लिए सभी दिशाओं में प्रयोग किये हैं।

इनमें से हर एक साधन या मार्ग हमारी समग्र सत्ता की किसी चीज के अनुरूप है और इसलिए उसके विकास के पूर्ण लक्ष्य के लिए आवश्यक है। मनुष्य के आत्म-विस्तार के लिए चार बातें आवश्यक हैं, यदि उसे ऊपरी तल के अज्ञान का ऐसा प्राणी न रहना हो जो वस्तुओं के सत्य को अंधेरे में टटोलता हुआ और ज्ञान के टुकड़ों और खण्डों को जोड़नेवाला —— बाहरी तल पर अभी जैसा है, वैसा ही —— छोटा-सा वैश्व 'शक्ति' का अर्ध-क्षम जीव है। उसे अपने-आपको और जगत् को पूरी तरह जानने के लिए उसे अपने और उसके बाहरी रूप के पीछे जाना होगा, उसे अपनी मानसिक सत्ता और प्रकृति के भौतिक तत्त्व के नीचे गहरी डुबकी लगानी होगी। यह तभी किया जा सकता है जब वह अपने आंतरिक मन, प्राण, शरीर और चैत्य सत्ता और उसकी शक्तियों और गतिविधियों तथा वैश्व विधानों और गुह्य'मन'

जब तुम ज्योति देखते हो तब वह अन्तर्दृष्टि है । जब तुम्हें लगता है कि वह ज्योति तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर रही है तब यह अनुभूति है ।
—— श्रीमाँ

और 'प्राण' की प्रक्रियाओं को जाने जो विश्व के भौतिक उग्र रूप के पीछे मौजूद हैं: यदि गुह्यवाद शब्द को इसके विस्तृत अर्थों में लें तो यही गुह्य वाद का क्षेत्र है। उसे उस 'शक्ति' या उन 'शक्तियों' को भी जानना चाहिये जो जगत पर शासन करती हैं। यदि कोई 'विश्व आत्मा' या 'स्रष्टा' है तो उसके साथ जैसे भी संभव हो संबंध या सायुज्य स्थापित करके वैश्व सत्ता या विश्व की शासन 'सत्ताओं' के साथ या परम पुरुष और उनके परम् संकल्प के साथ किसी प्रकार की समस्वरता लाकर उसके दिये हुए विधान का अनुसरण करे और उसके द्वारा दिये हुए या प्रकट किये हुए जीवन और आचरण के लक्ष्य का अनुसरण करे। और अपने-आपको उस (पुरुष) की मांग के अनुसार उच्चतम उच्चता तक उठाने में समर्थ हो। और अगर इस प्रकार की कोई वैश्व या परम 'सत्ता' या 'आत्मा' नहीं है तो उसे यह जानना चाहिये कि वह है क्या, और अपनी वर्तमान अपूर्णता और अशक्यता में से वहां तक कैसे उठा जा सकता है। यह धर्म का रास्ता है। उसका उद्देश्य है मानव और भगवान में संबंध स्थापित करना और यह करते हुए विचार, प्राण और शरीर को इतना ऊंचा उठाना कि वे अंतरात्मा और आत्मा के शासन को स्वीकार कर सकें। परंतु यह ज्ञान एक मत या रहस्यमय अंत:प्रकाश से बढ़कर होना चाहिये। मनुष्य के विचारशील मन को इसे स्वीकार कर सकने, वस्तुओं के तत्त्व और विश्व के अवलोकित सत्य के साथ इसे सम्बन्ध करने में समर्थ होना चाहिये। यह दर्शन का क्षेत्र है और आत्मा के सत्य के क्षेत्र में यह काम केवल आध्यात्मिक दर्शन ही कर सकता है। चाहे वह अपनी प्रक्रिया में बौद्धिक हो या अंतर्भासिक । किंतु सारा ज्ञान और सारा प्रयास तभी सफल हो सकता है जब वह अनुभूति में बदल जाये और चेतना तथा उसकी प्रतिष्ठित क्रियाओं का अंग बन जाये। आध्यात्मिक क्षेत्र में सभी धार्मिक, गुह्य या दार्शनिक ज्ञान और प्रयास तभी सफल हो सकते हैं जब वे अंत में आध्यात्मिक चेतना को खोल सकें और ऐसे अनुभवों को लायें जो उस चेतना की प्रतिष्ठा करें, उसे हमेशा उन्नत, विस्तृत और समृद्ध बनायें तथा ऐसे जीवन और कर्म की रचना करें जो आत्मा के सत्य के अनुरूप रह सकें।"

'लाइफ डिवाइन', पृ.८६०-६२ — श्रीअरविन्द

उपर्युक्त उद्धरण पर श्रीमाँ की वार्ता

एक बात बड़ी विलक्षण है —— अब मुझे याद नहीं कि आगे चलकर श्रीअरविन्द इसके बारे में कुछ कहेंगे या नहीं —— लेकिन ये चारों क्रियाएं या उपलब्धियां जिनके बारे में श्रीअरविन्द कह रहे हैं (धर्म, गुह्यवाद, आध्यात्मिक दर्शन और आध्यात्मिक अनुभूति), और जो मनुष्य के रूपांतर एवं विकास के लिए आवश्यक हैं, सामान्य रूप से मनुष्य की पहुंच के भीतर नहीं हैं।

जिसका अधिक-से-अधिक मनुष्यों द्वारा (जो लगभग पूरी तरह भौतिक चेतना में रहते हैं) अभ्यास किया जा सकता है, और शायद जिसे अधिक -से-अधिक लोग "समझ" सकते हैं (यद्यपि वह निश्चय ही "समझ" नहीं है), वह है धार्मिक पद्धति, केवल इसलिए कि वह निर्धारित मतों और प्रथाओं पर आधारित है। सिर्फ श्रद्धावश या सामूहिक सुझाव (मुख्यतः सामूहिक सुझाव) द्वारा अधिकांश मनुष्य जो अभी तक पर्याप्त आंतरिक विकास तक नहीं पहुंचे हैं, धर्म के मार्ग पर इकट्ठे हो सकते हैं।

गुह्यवाद के लिए तो तुम्हें पहले से ही विकास के दूसरे चरण तक पहुंच जाना चाहिये और प्राणिक जगत् में और भी अधिक सचेतन होना चाहिये, ताकि शक्तियों के खेल के साथ संपर्क में आ सको, यह उनके संचालन के लिए अनिवार्य है।

आध्यात्मिक दर्शन के लिए तो सिर्फ वे थोड़े-से लोग हैं जिनका मानसिक विकास काफी पूर्ण हो चुका है और जो बौद्धिक स्तर पर पूर्णतः सचेतन हैं, जो इस साधन को उपयुक्त ढंग से अपना सकते हैं; नहीं तो उन सबके लिए यह अंध-पत्र है जिनमें मानसिक कसरत करने की क्षमता नहीं है, और जो मन की कलाबाजियों का अनुसरण नहीं कर सकते।

अन्तर्दर्शन अध्यात्म लोक से नहीं आते । वे सूक्ष्म, भौतिक, प्राणमय, मनोमय या चैत्य लोक से या मन के ऊपर के लोकों से आते हैं । अध्यात्म लोक से भगवान की अनुभूतियाँ आती हैं, जैसे आत्मा की सब जगह उपस्थिति या भगवान की सबमें उपस्थिति ।

— श्रीमाँ

और अंत में, 'दिव्य जीवन' में कहीं पर श्रीअरविन्द ने कहा है कि आध्यात्मिक अनुभूति के मार्ग का अनुसरण करने के लिए अपने अंतर में "'आध्यात्मिक सत्ता" होनी चाहिये, तुम्हें "द्विज" होना चाहिये, क्योंकि यदि अपने अंदर आध्यात्मिक सत्ता नहीं है तो कम-से-कम ज्ञान पाने के छोर पर तो हो, तो भले व्यक्ति उन अनुभूतियों की नकल करने की चेष्टा कर ले, पर वह घटिया अनुकरण होगा या पाखंड, वह वास्तविकता नहीं होगी।

फलतः, एक साथ ही इन चारों मार्गों का अनुसरण कर सकने और उनके अभ्यास से सत्ता के लिए पूरा लाभ उठाने के लिए पहले से ही पूर्ण व्यक्तित्व होना चाहिये, जो मानवी और आध्यात्मिक प्रकृति के चारों मुख्य तत्त्वों में सचेतन जीवन के योग्य हो।

स्वभावतः, यह आंतरिक विकास सदा प्रत्यक्ष नहीं होता, और हमारी भेंट किसी ऐसे व्यक्ति से हो सकती है जिसके अंदर एक सचेतन आध्यात्मिक सत्ता हो, जो सुन्दरतम अनुभूतियां पाने के लिए तैयार हो, जब कि, बाहर से वह बिलकुल अनगढ़ और अधूरा दीखता हो।

यह भी जरूरी नहीं कि इस प्रगति का उल्लिखित क्रम से अनुसरण किया जाये, पर यदि हम चाहें कि हमारी उपलब्धि पूर्ण हो और सत्ता का पूर्ण रूपांतरण हो तो इन साधनों में से हर एक जो कुछ लाये उसके सार का हमें उपयोग कर सकना चाहिये।

चैत्य या आध्यात्मिक चेतना तुम्हें गहरी आंतरिक सिद्धि, भगवान् के साथ संपर्क, बाह्य बाधाओं से मुक्ति देती है; पर यदि इस मुक्ति का असर होना है, बाकी सत्ता पर इसकी प्रतिक्रिया होनी हो तो मन को काफी उन्मुक्त होना होगा, ताकि 'ज्ञान' की आध्यात्मिक ज्योति को धारण कर सके; प्राण को यथेष्ट शक्तिशाली कर सके, उनपर प्रभुत्व पा सके; शरीर को काफी अनुशासित और व्यवस्थित होना होगा ताकि नित्य के, हर पल के आचरण और चेष्टा में गहरी अनुभूति को व्यक्त कर

इस पथ (योग) पर तब तक पग नहीं रखना चाहिये जब तक व्यक्ति चैत्य की पुकार तथा अन्त तक जाने की अपनी तैयारी के प्रति सुनिश्चित नहीं है ।

— श्रीअरविन्द

सके और संपूर्ण जीवन जी सके।

यदि इन चीजों में से एक की भी कमी हो तो परिणाम पूर्ण नहीं होगा। कोई यह बहाना बनाकर कि यही सबसे महत्वपूर्ण, 'केन्द्रीय वस्तु' नहीं है — इस या उस चीज को अति तुच्छ समझ सकता है और बाहरी चीजों की अवहेलना तुम्हें 'परम' के साथ आध्यात्मिक संबंध बनाने में रोक नहीं सकती, पर यह बात जीवन से पलायन करनेवालों के लिए ही अच्छी है।

यदि हमें संपूर्ण समग्र सत्ता बनना है, सर्वांगीण सिद्धि पानी है, तो हमें अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को मन-प्राण-शरीर में रूपायित कर सकना चाहिये। जितना ही यह रूपायन पूर्ण होगा, अखंड और संपूर्ण सत्ता द्वारा संपादित होगा, उतनी ही हमारी सिद्धि सर्वांगीण और अविकल होगी।

पूर्ण योग का अनुसरण करनेवालों के लिए कुछ भी निरर्थक नहीं है और कुछ भी उपेक्षा योग्य नहीं है ... । सारी बात है हर चीज को उसके उचित स्थान पर रखना जानना, और उसी को शासन का भार देना जो सचमुच शासन का अधिकारी हो।

CWM Vol.9, pp.341-346 — श्रीमाँ (१८ जून १९५८)

एकमात्र सारभूत वस्तु

उसका कहना अगर यह है कि कोई भी व्यक्ति तब तक सफलतापूर्वक ध्यान नहीं कर सकता, कोई अनुभूति नहीं प्राप्त कर सकता जब तक कि वह पवित्र और पूर्ण न हो जाये तो मैं इसे समझने में असमर्थ हूं। यह मेरे अपने अनुभव के विरुद्ध है। मुझे सदा ही ध्यान द्वारा अनुभूति पहले प्राप्त हुई और शुद्धि बाद में उसके परिणामस्वरूप शुरू हुई। मैंने बहुतों को ध्यान के द्वारा महत्वपूर्ण, यहां तक कि मूलभूत अनुभव प्राप्त करते देखा है, पर उनके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि उनका आंतरिक विकास बहुत हो चुका है। क्या वे सभी योगी, जिन्होंने सफल रूप

चैत्य पुरुष की स्वाभाविक मनोवृति होती है अपने को बालवत्, भगवान का पुत्र, भक्त अनुभव करना... ।

— श्रीअरविन्द

में ध्यान किया और अपनी अंतश्चेतना में महान अनुभव प्राप्त किये, अपनी प्रकृति में पूर्ण थे? मुझे तो ऐसा नहीं लगता। इस क्षेत्र के पूर्ण-सार्वभौम सिद्धांतों पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। कारण, अध्यात्म-चेतना का विकास अतीव विशाल एवं जटिल कार्य है जिसमें सब प्रकार की चीजें घटित हो सकती हैं और यहां यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य के लिए यह विकास उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है और एकमात्र आवश्यक वस्तु है —आन्तरिक पुकार, अभीप्सा तथा इसकी सिद्धि के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना। इसकी परवाह नहीं कि इसमें कितना समय लगता है तथा क्या-क्या कठिनाइयां या बाधाएं इसके मार्ग में आती हैं, क्योंकि और किसी चीज से हमारे अन्दर की अन्तरात्मा संतुष्ट नहीं हो सकती।

यदि आरम्भ से ही पूर्ण समर्पण, श्रद्धा इत्यादि का होना योग के लिए अनिवार्य होता तो इसे कोई भी न कर पाता। यदि मुझसे ऐसी अवस्था की मांग की गयी होती तो मैं भी योग न कर पाया होता .....।

श्रीअरविन्द अपने विषय में : पृ.८२ — श्रीअरविन्द

ठोस अनुभव

अधिक गंभीर एवं आध्यात्मिक अर्थ में ठोस अनुभव वह है जो अनुभूत वस्तु को हमारी चेतना के सामने किसी स्थूल पदार्थ की अपेक्षा कहीं अधिक सत्य, सजीव और घनिष्ठ रूप में उपस्थित करता है। सगुण भगवान् या निर्गुण ब्रह्म अथवा आत्मा का ऐसा अनुभव साधारणतया साधना के प्रारम्भ में या शुरू के वर्षों में अनेक वर्षों तक भी नहीं प्राप्त होता। इतना शीघ्र ऐसा अनुभव विरलों को ही प्राप्त होता है; मुझे ऐसा अनुभव लन्दन में प्राप्त प्रथम पूर्व-यौगिक अनुभव के पन्द्रह वर्ष बाद तथा

जब वास्तविक सत्ता की खोज कर ली जाती है तब अहंकार की उपयोगिता समाप्त हो जाती है और इस रूपायन को समाप्त हो जाना पड़ता है ।
— श्रीअरविन्द

योग आरम्भ करने के पांचवें वर्ष में उपलब्ध हुआ। इसे मैं असाधारण रूप से तीव्र, लगभग एक्सप्रेस ट्रेन की -सी गति समझता हूँ, यद्यपि कुछ लोगों को, निस्सन्देह, इससे भी जल्दी उपलब्धियां हुई होंगी। परंतु इसकी इतनी शीघ्र आशा एवं मांग करना किसी अनुभवी योगी या साधक की दृष्टि में एक अविवेकपूर्ण एवं असामान्य अधीरता का ही सूचक समझा जायेगा। अधिकतर योगी यही कहेंगे कि प्रारंभिक वर्षों में साधक अधिक-से -अधिक एक मन्द विकास की ही आशा कर सकता है और सुनिश्चित

अनुभव तो केवल तभी प्राप्त हो सकता है जब प्रकृति तैयार हो जाये औऱ पूर्ण रूप से भगवान् की ओर एकाग्र हो जाये।

श्रीअरविन्द अपने विषय में : पृ.८३ — श्रीअरविन्द

भगवत्कृपा द्वारा अनुभूति का प्रवाह

यदि एकाग्रता से तुम्हारा मतलब परिश्रम करके ध्यान करना हो तो ऐसी कोई चीज तो कभी नहीं हुई। जो मैंने किया वह था चार-पांच घण्टे रोज का प्राणायाम और यह तो चीज ही कुछ और है। और, तुम किस प्रवाह की बात कहते हो? काव्यधारा तो उन्हीं दिनों उतरी थी जिन दिनों मैं प्राणायाम किया करता था, उसके कुछ वर्षों के बाद नहीं। अगर अनुभूतियों के प्रवाह की बात है तो वह कुछ वर्षों के बाद आया था;लेकिन तब मुझे प्राणायाम छोड़े काफी समय हो चुका था, मैं कोई भी प्रयत्न नहीं कर रहा था और न मुझे यह मालूम ही था कि अपने सारे प्रयत्नों के असफल हो जाने के बाद अब मैं कौन-सी राह पकड़ूं और यह प्रवाह जब शुरू हुआ तो बरसों के प्राणायाम या ध्यान के परिणामस्वरूप नहीं बल्कि मानों चुटकियों में, या तो एक तात्कालिक गुरु की कृपा से (लेकिन वह गुरु कृपा न थी, क्योंकि वे स्वयं ही इसे देख कर दंग रह गये) या पहले तो शाश्वत ब्रह्म की कृपा से और फिर महाकाली और श्रीकृष्ण की करुणा से।

श्री अरविन्द अपने विषय में : पृ.८३ — श्रीअरविन्द

प्राणायाम से मुझे किसी प्रकार के आध्यात्मिक साक्षात्कार की जरा-सी झांकी भी तो नहीं प्राप्त हुई। मैंने प्राणायाम करना बहुत पहले ही बन्द कर दिया था। ब्रह्म की अनुभूति तब प्राप्त हुई जब मैं उसके लिए रास्ता टटोल रहा था, किसी प्रकार की भी साधना नहीं कर रहा था, जरा भी प्रयत्न नहीं कर रहा था क्योंकि मुझे पता ही नहीं था कि क्या यत्न करूँ, पहले के सारे प्रयत्न तो विफल ही हो चुके थे। तब तीन दिनों में ही मुझे एक अनुभव प्राप्त हुआ जिसे बहुतेरे योगी सुदीर्घ योगाभ्यास के अन्त में ही प्राप्त करते हैं। वह अनुभव मुझे बिना यत्न किये ही प्राप्त हो गया। मेरे उसे पाने पर लेले भी आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि वे मुझे एक बिलकुल भिन्न चीज प्राप्त कराने के लिए यत्न कर रहे थे।

क्यों मेरे अन्दर सब कुछ चित्रकारी-संबन्धी अन्तर्दर्शन तथा अन्य कई वस्तुओं की तरह नहीं खुल पड़ा? सब चीजें इस प्रकार नहीं खुलीं। जैसा मैंने तुमसे कहा था, बहुत सी चीजों में मुझे घिसट-घिसटकर चलना पड़ा। अन्यथा इस काम में इतने सारे साल (३०) न लगते। इस योग में मनुष्य प्रत्येक चीज में पगडंडी नहीं पकड़ सकता। मुझे प्रत्येक समस्या पर और चेतना के प्रत्येक स्तर पर कार्य करना पड़ा जिससे उसका समाधान या रूपांतर किया जा सके और प्रत्येक में मुझे प्रभु-प्रदत्त अवस्थाओं को, जैसी कि वे थीं, स्वीकार करके, चमत्कारों का आश्रय लिए बिना सच्चाई से कार्य करना पड़ा। निःसन्देह, यदि चेतना बिलकुल आप-से-आप विकसित हो तब तो सब कुछ ठीक ही होगा, सब वस्तुएं उस विकास के साथ-साथ ही प्राप्त हो जायेंगी, पर तब भी एक आसान छलांग में, अस्तव्यस्त ढंग से नहीं।

मुझे सच्चा मार्ग प्राप्त करने के लिए चार वर्षों तक आन्तरिक प्रयास करना पड़ा, यद्यपि भागवत सहायता सब समय ही मेरे साथ थी, और इसके बाद भी ऐसा जान पड़ा मानों यह अचानक ही मिल गया हो। उसके बाद उसका ठीक-ठीक अनुसरण करने में और दस वर्षों तक एक परम आन्तर पथप्रदर्शन के अनुसार उत्कट योगाभ्यास करना पड़ा। इसका कारण यह था कि भविष्य को पा सकने या पा लेने से पहले मुझे अपने अतीत तथा संसार के अतीत को आत्मसात् करके उन्हें अतिक्रांत करना था।

श्रीअरविन्द अपने विषय में : पृ.८४ — श्रीअरविन्द

***

कल्पना, अन्तःप्रेरणा, अनुभूति

... मेरे अन्तर्जीवन को सबसे एक निश्चित दिशा में मोड़ने का श्रेय एक ऐसे व्यक्ति को है जो बुद्धि, शिक्षा एवं क्षमता में मुझसे अनन्त रूप में कम स्तर के थे, और आध्यात्मिक दृष्टि से किसी प्रकार पूर्ण या सर्वश्रेष्ठ नहीं थे। परन्तु जब मैंने देखा कि उनके पीछे एक शक्ति विद्यमान है और मैंने सहायता के लिए उनकी ओर मुड़ने का निश्चय किया तब मैंने अपने को पूर्ण रूप से उनके हाथों में सौंप दिया तथा यांत्रिक निष्क्रियता के साथ उनके मार्गदर्शन का अनुसरण किया। वे स्वयं चकित हो गये और दूसरों से बोले कि इससे पहले मुझे कभी कोई ऐसा साधक नहीं मिला जो इतने समग्र एवं निःशेष रूप में तथा बिना हिचकिचाहट के अपने-आपको सहायक के मार्ग-निर्देश के प्रति समर्पित कर सके। फलस्वरूप, मेरे अन्दर एक के बाद एक मौलिक ढंग के ऐसे रूपांतरकारी परिवर्तन होने लगे कि उन्हें समझना उनकी सामर्थ्य से बाहर हो गया और उन्होंने विवश होकर मुझसे कहा कि आगे के लिए मैं, वैसे ही पूर्ण समर्पण के साथ जैसा मैंने मानवीय माध्यम के निकट प्रदर्शित किया है, अपने-आपको अपने अन्तरस्थ गुरु के प्रति समर्पित कर दूँ। यह उदाहरण मैंने इस बात को दिखाने के लिए दिया है कि किस तरह से चीजें काम करती हैं। मानव बुद्धि इनके लिए जो नपा-तुला ढंग निश्चित करना चाहती है उससे नहीं बल्कि एक अधिक रहस्यमय एवं महत्तर नियम के द्वारा ही ये अपना कार्य करती हैं।

श्रीअरविन्द अपने विषय में : पृ.८७ — श्रीअरविन्द

अद्वैतमय आत्मा की अनुभूति

प्र.- आपको परम आत्मा की जिस ढंग से अनुभूति हुई उसके संबंध में आपने 'क्ष' को पहले दिन जो लिखा था वह मैंने पढ़ा है। मुझे तो यह बात लगभग विचार से परे की लगती है कि कोई ऐसी चीज भी हुई होगी!

उ.- यह मेरे बस की बात नहीं। यह चीज घटित हुई। 'तर्कसंगत' और 'संभव' के विषय में मन के सिद्धांतों से आध्यात्मिक जीवन एवं अनुभव नहीं प्राप्त होते।

सब प्रकार की आसक्ति साधना के मार्ग में बाधक है ।

— श्रीअरविन्द

प्र. - किन्तु आत्मा की उस अनुभूति की मधुर स्मृति ने आपको सहारा अवश्य दिया होगा।

उ.- इसमें गुड़-शक्कर-सा कतई कुछ भी नहीं था, क्योंकि यह मेरे साथ महीनों और बरसों रही और अब भी है, यद्यपि है अन्य अनुभूतियों के साथ घुली-मिली । मेरा कथ्य यह है कि ऐसे सैंकड़ों भक्त हैं जिनमें प्रेम और चाह है पर भगवान् का कोई ठोस अनुभव नहीं जो उन्हें सहारा दे, सहारे के नाम पर होती है केवल भगवद्विषयक मानसिक धारणा या भाविक विश्वास। सारी बात यह है कि ऐसा कहना ठीक नहीं कि पहले व्यक्ति को निर्णयात्मक या ठोस अनुभूति प्राप्त कर लेनी होगी और उसके बाद ही कहीं उसमें भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकता है। यह बात आध्यात्मिक अनुभव के तथ्यों के विपरीत है, और उसके बिलकुल साधारण तथ्यों के भी।

श्रीअरविन्द अपने विषय में : पृ.८८ — श्रीअरविन्द

निर्वाण का अनुभव

मैंने यह कभी नहीं कहा है कि (मानव जीवन से संबंधित) वस्तुएं आज सामंजस्यपूर्ण हैं प्रत्युत, मानव चेतना जैसी है उसके रहते सामंजस्य का प्रतिष्ठित होना असंभव है। मैंने तुमसे सदा यही कहा है कि मानव चेतना दोषपूर्ण है और एकदम असाध्य है और यही कारण है कि मैं यह प्रयत्न कर रहा हूँ कि एक उच्चतर चेतना का अवतरण हो और वह बिगड़े संतुलन को ठीक कर दे। मैं तुम्हें तत्क्षण निर्वाण (जो वास्तविक नहीं होगा) नहीं देना चाहता, क्योंकि मेरे अनुभव-क्रम में तो निर्वाण सामंजस्य की ओर ले जानेवाला एक सोपानमात्र है। हर्ष की बात है कि तुम नीरवता में दीक्षित हो रहे हो। और निर्वाण भी अनुपयोगी नहीं है । मेरे जीवन में तो यह सबसे भावात्मक आध्यात्मिक अनुभव था और इसी ने शेष सारी साधना को संभव बनाया। किन्तु जहां तक इन चीजों को प्राप्त करने के निश्चयात्मक उपाय का

जीवात्मन अपने सारतत्व में न परिवर्तित होता है और न विकसित होता है । इसका सारतत्व व्यक्तिगत विकास के परे स्थित रहता है ।
— श्रीअरविन्द

प्रश्न है, मैं नहीं जानता कि तुम्हारा मन उसका अनुसरण करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार है या नहीं। वास्तव में विधियां अनेक हैं। स्वयं मैंने विचार के त्याग की विधि द्वारा इन्हें प्राप्त किया।"बैठ जाओ", मुझसे कहा गया, "देखो, और तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे विचार बाहर से तुम्हारे भीतर आते हैं। उनके घुसने से पहले ही उन्हें दूर फेंक दो।" मैं बैठ गया, देखा और यह जानकर चकित रह गया कि सचमुच बात ऐसी ही है; मैंने स्पष्ट रूप में देखा एवं अनुभव किया कि विचार पास आ रहा है, मानों सिर के भीतर से या ऊपर से घुसना चाहता हो और उसके भीतर आने के पूर्व ही मैं स्पष्ट रूप में उसे पीछे धकेल देने में सफल हुआ।

तीन दिनों में, वस्तुतः एक ही दिन में, मेरा मन शाश्वत शांति से परिपूरित हो गया —— वह शांति अभी तक विद्यमान है। परन्तु मालूम नहीं कितने लोग ऐसा कर सकते हैं! एक व्यक्ति ने (शिष्य ने नहीं उन दिनों मेरे कोई शिष्य नहीं थे) मुझसे योग की विधि पूछी। मैंने कहा "सबसे पहले अपने मन को शांत करो।" उसने किया और उसका मन पूर्ण रूप से शांत एवं रिक्त हो गया। तब वह भागा-भागा मेरे पास आया और कहने लगा: "मेरा मस्तिष्क विचार-शून्य है, मैं कुछ नहीं सोच सकता। मैं मूढ़ हुआ जा रहा हूँ।" उसने इतना देखने और जानने के लिए भी प्रतीक्षा नहीं की कि जिन विचारों को वह इस समय वाणी से प्रकट कर रहा है वे कहां से आ रहे हैं! और न यही उसकी समझ में आया कि जो पहले से मूढ़ है ही वह और क्या मूढ़ बनेगा! पर जो हो, उन दिनों मेरे अन्दर इतना धैर्य नहीं था और मैंने उसे यों ही छोड़ दिया जिससे वह अपनी अद्भुत ढंग से प्राप्त नीरवता खो बैठा।

इसकी सामान्य विधि यह है कि व्यक्ति अपने मस्तिष्क, मन और शरीर में उर्ध्व से नीरवता का 'आवाहन करे'। यदि कोई इसका प्रयोग कर सके तो यह सबसे सुगम विधि है।

श्रीअरविन्द अपने विषय में : पृ.९० —— श्रीअरविन्द

कामना, राजस, तथा अहंकार की अस्वीकृति द्वारा व्यक्ति को ऐसी अचंचलता तथा शुद्धता प्राप्त होती है जिसमें अनिर्वचनीय शान्ति उतर सकती है ।

— श्रीअरविन्द

मन की स्वतन्त्रता और प्रभुता

जिन मनुष्यों का मानसिक विकास हो चुका है, जो साधारण मनुष्यों से ऊपर उठ चुके हैं, उन्हें किसी-न-किसी तरह अथवा कम-से-कम किसी विशेष समय पर और किसी विशेष प्रयोजन के लिए अपने मन के दो भागों को अलग-अलग करना ही पड़ता है। एक भाग है सक्रिय, जो विचारों का कारखाना है और दूसरा है प्रशांत और महत्वपूर्ण, जो एक साथ ही साक्षी भी है और संकल्पकर्त्ता भी, जो विचारों को देखता है, जांचता है, उनका त्याग एवं बहिष्कार करता है अथवा उन्हें स्वीकार करता है, उनके संशोधन और परिवर्तन की आज्ञा देता है, मनोमय गृह का स्वामी है,'साम्राज्य' का अधिकारी है।

योगी इससे भी आगे जाता है; वह केवल मन के अन्दर ही स्वामी नहीं होता, बल्कि एक प्रकार से मन में रहते हुए ही मानों उससे बाहर चला जाता है और उससे ऊपर या उसके एकदम पीछे अवस्थित होकर उससे मुक्त रहता है। उसके विषय में अब विचारों के कारखाने की उपमा उतनी लागू नहीं होती; क्योंकि वह देखता है विचार बाहर से, विश्वमानस या विश्व प्रकृति से आते हैं, कभी कभी तो उनका निर्दिष्ट और स्पष्ट रूप होता है और कभी कभी-कभी कोई रूप नहीं होता और जब उनका कोई रूप नहीं होता तब उन्हें हमारे अन्दर ही कहीं रूप प्राप्त होता है। हमारे मन का प्रधान कार्य यह है कि वह इन विचार तरंगों को (साथ ही साथ प्राण की लहरों तथा सूक्ष्म भौतिक शक्ति की लहरों को भी) या तो स्वीकार करता है या त्याग देता है अथवा चारों ओर की प्रकृति की शक्ति से आनेवाली विचार-सामग्री को (अथवा प्राण की गतियों को) एक व्यक्तिगत मनोमय आकार प्रदान करता है। इसके लिए मैं लेले का अत्यधिक ऋणी हूँ कि उन्होंने मुझे इस तथ्य का साक्षात्कार कराया। "ध्यान के लिए बैठ जाओ," उन्होंने कहा, "परंतु कुछ भी सोचो नहीं, केवल अपने मन का निरीक्षण करो; तुम विचारों को 'उसके अन्दर आते' देखोगे; उनके

विकास के क्रम में ही, जीवात्मन का प्रतिनिधित्व विकसनशील चैत्य पुरुष करता है जो प्रकृति के समस्त भागों को अवलम्ब देता है ।

— श्रीअरविन्द

प्रवेश कर सकने के पूर्व उन्हें अपने मन से तब तक दूर फेंकते रहो जब तक तुम्हारा मन पूर्ण नीरवता प्राप्त करने में समर्थ न हो जाये।" मैंने यह पहले कभी नहीं सुना था कि विचार प्रत्यक्ष रूप में बाहर से हमारे मन के भीतर आते हैं, परन्तु इस सत्य या इसकी संभावना पर शंका करने की बात भी मेरे मन में नहीं आई, बस मैं बैठ गया और वैसा ही किया। क्षण-भर में मेरा मन उच्च पर्वत शिखर के निर्वात आकाश की भांति शांत हो गया और तब मैंने देखा कि एक विचार, फिर दूसरा विचार बाहर से स्पष्ट रूप में आ रहा है। इसके पूर्व कि वे मेरे मस्तिष्क में घुसकर उसे अपने अधिकार में कर सकें मैंने उन्हें झट दूर फेंक दिया और तीन दिनों में ही मैं उनसे मुक्त हो गया। उसी क्षण से, सिद्धांततः, मेरे अन्दर का मनोमय पुरुष एक स्वतंत्र 'प्रज्ञा' किवा विराट् 'मन' बन गया जो विचारों के कारखाने के एक मजदूर की भांति वैयक्तिक विचार के संकुचित घेरे में बंधा नहीं था, बल्कि सत्ता के सैंकड़ों स्तरों से ज्ञान ग्रहण करने लगा तथा इस विशाल दर्शन-साम्राज्य एवं विचार-साम्राज्य में से अपनी इच्छा के अनुसार विषयों और विचारों का चुनाव करने में स्वतंत्र था। यह सब मैंने केवल इस बात पर बल देने के लिए बतलाया है कि हमारे मनोमय पुरुष की शक्यताओं की सीमा नहीं बांधी जा सकती और यह स्वतंत्र साक्षी तथा अपने गृह का स्वामी बन सकता है। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति इसे मेरी ही तरह और उसी वेग के साथ निश्चित रूप में कर सकता है (क्योंकि इस नयी अव्याहत मानसिक शक्ति की पीछे की पूर्ण-विकसित अवस्थाओं को प्राप्त करने में मुझे अवश्य ही समय लगा, अनेक वर्ष लग गये) किन्तु अपने मन की एक प्रकार बढ़ती हुई स्वतंत्रता और प्रभुता प्राप्त करना किसी भी साधक के लिए पूर्ण रूप से संभव है यदि उसमें इस कार्य को करने के लिए श्रद्धा तथा संकल्प विद्यमान हों।

***

केवल अतिमानस निम्न प्रकृति को रूपान्तरित कर सकता है ।

— श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द की आध्यात्मिक अनुभूतियां

(१८९२ में जब वे उपनिषद पढ़ रहे थे, आत्मा की मानसिक अनुभूति हुई थी)

क्या आपने योग बाद में, गुजरात में जाकर नहीं शुरू किया था?

हां। लेकिन इसका सूत्रपात हुआ था लन्दन में, अंकुरित हुआ यह तब जब मैंने अपोलो बन्दरगाह पर पैर रखा, भारत-भूमि का स्पर्श किया, यह खिल उठा तब जब बड़ौदा-निवास के प्रथम वर्ष में, मेरी घोड़ागाड़ी की दुर्घटना का खतरा उपस्थित हुआ।

'सेंटेनरी वॉल्यूम' खण्ड २६, पृ. ८९ — श्रीअरविन्द

लेले से भेंट होने से पहले भी श्रीअरविन्द को कुछ आध्यात्मिक अनुभूतियां हो चुकी थीं, परन्तु यह उस समय की बात है जब वे योग के बारे में कुछ भी न जानते थे, यहां तक कि यह भी न जानते थे कि योग है क्या, — उदाहरणार्थ, एक विशाल शान्ति उन पर उस क्षण उतरी जब उन्होंने, एक लम्बी अनुपस्थिति के बाद भारतभूमि पर पहला पग रखा । वस्तुतः बम्बई में, अपोलो बन्दरगाह पर ज्यों ही पहला पग रखा तब यह शान्ति उतरी थी (इस शान्ति ने उन्हें घेर लिया और बाद में कई महीनों तक बनी रही)। काश्मीर में तख्ते-सुलेमान के किनारे टहलते हुए उन्हें अनन्त शून्य की अनुभूति हुई । नर्मदा-तट पर मन्दिर में काली की मूर्त्ति में जीवन्त उपस्थिति का अनुभव हुआ। बड़ौदा-निवास के प्रथम वर्ष में घोड़ागाड़ी की दुर्घटना का संकट उपस्थित होने पर अपने अन्दर से आविर्भूत भगवान् के दर्शन हुए, इत्यादि। परन्तु ये आन्तरिक अनुभूतियां उन्हें अपने-आप, अकस्मात् प्राप्त हुई थीं, ये साधना का भाग नहीं थीं। उन्होंने योग अपने-आप, बिना किसी गुरु के शुरू कर दिया था, बस, उन्हें अपने एक मित्र से, जो गंगा मठ के ब्रह्मानन्द के शिष्य थे, कुछ निर्देश मिले थे। यह योग पहले-पहल प्राणायाम के लम्बे अध्यवसायपूर्ण अभ्यास तक सीमित रहा। (एक समय वे इसे दिन में छः या छः से भी अधिक घण्टे तक करते रहते थे)।

'सेटेनरी वॉल्यूम' खण्ड २६, पृ.५० — श्रीअरविन्द

१९०८ के बाद की अनुभूतियांः

श्रीअरविन्द का योग और उनका आध्यात्मिक दर्शन उनको हुई चार महान् अनुभूतियों पर आधारित हैं। पहली उनको तब हुई थी जब वे जनवरी १९०८ में, महाराष्ट्रीय योगी विष्णु भास्कर लेले के साथ ध्यान कर रहे थे । यह अनुभूति देश कालातीत शान्त ब्रह्म की थी और यह सम्पूर्ण चेतना को पूर्ण और स्थायी रूप से निश्चल करने के उपरान्त प्राप्त हुई थी । इसमें उन्हें जबर्दस्त रूप से ऐसा अनुभव और ऐसा स्पष्ट बोध हुआ कि जगत् पूरी तरह से मिथ्या है, यद्यपि यह अनुभव दूसरी अनुभूति के बाद विलुप्त हो गया। यह दूसरी अनुभूति थी विश्व-चेतना की, कि सभी प्राणी भगवान् हैं और जो कुछ भी है सब भगवान् हैं । यह अनुभूति उन्हें अलीपुर जेल में हुई थी और इसका जिक्र उन्होंने अपने उत्तरपाड़ा भाषण में किया है। दूसरी दो अनुभूतियां : इनमें एक थी उस परमोच्च सत्ता की, जिसके निष्क्रिय ब्रह्म और सक्रिय ब्रह्म दो पक्ष हैं, दूसरी थी चेतना के एक से एक ऊँचे स्तरों की जो अतिमानस तक जा पहुंचते हैं। अलीपुर जेल में, अपने ध्यान में वे इनकी ओर पहले ही पग बढ़ा चुके थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने लेले से अपनी साधना के प्रमुख सिद्धान्त के रूप में यह ग्रहण किया था कि वे अपनी साधना और बाहरी कार्य-कलाप दोनों के लिए पूरी तरह भगवान् और उनके मार्ग-दर्शन पर ही निर्भर करें। इसके बाद किसी अन्य के मार्ग दर्शन में रहना अब एक असम्भव बात थी और किसी से भी सहायता की अब कोई आवश्यकता भी नहीं रह गयी थी। सच पूछो तो श्रीअरविन्द ने किसी से भी कभी विधिवत् दीक्षा ग्रहण नहीं की . .. .।

'सेंटेनरी वॉल्यूम' खण्ड २६,पृ.६४ — श्रीअरविन्द

अनुभूति और ज्ञान में कोई फर्क है क्या ?

जब तुम कोई प्रतीकात्मक स्वप्न देखो तो यह अनुभूति है, जब तुम्हें यह मालूम हो कि उसका क्या अर्थ है तो यह ज्ञान है ।

— श्रीमाँ

'सावित्री' की अनुभूतियाँ

'सावित्री' - पाठ एक सच्ची अनुभूति है। मनुष्य ने जितने भी रहस्य हस्तगत किये हैं उन सबको श्रीअरविन्द ने प्रकट कर दिया है और उस सबको भी जो भविष्य के गर्भ में हैं। यह सब 'सावित्री' की गहराई में है। लेकिन इस सबको खोजने के लिए ज्ञान चाहिये, चेतना के लोकों की अनुभूति, अतिमानस की अनुभूति, यहां तक कि 'मृत्यु' पर विजय की अनुभूति भी होनी चाहिये। उन्होंने सभी अवस्थाओं का आलेखन किया है, प्रत्येक पग को अंकित किया है ताकि पूर्णयोग में सर्वांगीण प्रगति हो सके ...।

ये ऐसी अनुभूतियां हैं, ऐसी वास्तविकताएं और विश्व से परे के सत्य हैं जिन्हें वे जी चुके हैं। उन्होंने इन सबका उसी तरह अनुभव किया था जैसे तुम भौतिक रूप में सुख-दुःख का अनुभव करते हो। वे निश्चेतना के अन्धकार में, मृत्यु के पास-पास चले, उन्होंने सर्वनाश के दुःख सहे और कीचड़ में से, संसार के दुःख-दारिद्र्य में से निकल कर परम प्राचुर्य में सांस लेते हुए वे परम आनन्द में प्रविष्ट हुए। उन्होंने इन सब क्षेत्रों को पार किया, भौतिक रूप में इतना अधिक दुःख पाया और सहन किया जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। आज तक किसी ने भी इतना अधिक दुःख सहन नहीं किया है। उन्होंने दुःख को स्वीकार किया ताकि दुःख को परम प्रभु के साथ ऐक्य के आनन्द में बदल सकें। यह एक ऐसी अद्वितीय वस्तु है जिसकी तुलना संसार के इतिहास में किसी से नहीं की जा सकती। यह एक ऐसी चीज है जो पहले कभी नहीं हुई। वे 'अज्ञात' का पथ खोजने वाले पहले व्यक्ति हैं। उन्होंने इस पथ को इसलिए खोजा है कि हम अतिमानस की ओर निश्चय के साथ बढ़ सकें। उन्होंने हमारे लिए काम आसान कर दिया है। 'सावित्री' रूपान्तर का पूर्ण योग है और यह योग पार्थिव चेतना में पहली बार प्रकट हो रहा है।

और मेरा ख्याल है, मनुष्य उसे ग्रहण करने के लिए अभी तक तैयार नहीं है। यह उसके लिए बहुत अधिक ऊंचा और बहुत अधिक विशाल है। मनुष्य उसे

अतिमानस सच्चिदानन्द तथा सृष्टि के निम्न गोलार्ध के बीच में है ।
— श्रीअरविन्द

समझ नहीं सकता, उसे पकड़ नहीं पाता क्योंकि 'सावित्री' को मन के द्वारा नहीं समझा जा सकता। उसे समझने और आत्मसात् करने के लिए आध्यात्मिक अनुभूतियों की जरूरत है।

'मधुर मां' पुस्तक से — श्रीमाँ

माताजी की अनुभूतियाँ

१२ अप्रैल, १९६२ की रात की अनुभूति

(कई हफ्तों की गम्भीर बीमारी के बाद जिसमें माताजी का जीवन खतरे में था।)

अचानक रात को मैं इस पूर्ण अभिज्ञता के साथ जगी जिसे हम 'जगत् का योग' कह सकते हैं। परम प्रेम महान् स्पन्दनों द्वारा अभिव्यक्त हो रहा था और, हर स्पन्दन जगत् को उसकी अभिव्यक्ति में और अधिक आगे ले जा रहा था। वे शाश्वत अलौकिक भागवत प्रेम के महान् स्पन्दन थे, केवल भागवत प्रेम के। भागवत प्रेम का हर स्पन्दन जगत् को उसकी अभिव्यक्ति में और अधिक आगे ले जा रहा था।

और उसके साथ यह निश्चिति थी कि जो होना था हो गया है और यह कि अतिमानसिक अभिव्यक्ति चरितार्थ हो गयी है।

सब कुछ निर्वैयक्तिक था, कुछ भी व्यक्तिगत न था।

यह चलता रहा, चलता रहा, चलता ही रहा।

यह निश्चिति कि जो होना था हो चुका।

मिथ्यात्व के सभी परिणाम विलीन हो गये थेः मृत्यु एक भ्रान्ति थी, बीमारी एक भ्रान्ति थी, अज्ञान एक भ्रान्ति थी, ऐसी चीज जिसमें कोई वास्तविकता न थी, जिसका कोई अस्तित्व न था। केवल 'प्रेम', 'प्रेम', 'प्रेम', और 'प्रेम' - असीम, महान्, अलौकिक जो हर चीज को अपने में समाये हुए था।

उसे जगत् में कैसे अभिव्यक्त किया जाये? वह विरोध के कारण असम्भव सा था। लेकिन फिर यह आयाः "तुमने स्वीकार कर लिया है कि जगत् को

अपने संकल्प तथा कर्मों को हमेशा भगवान को अर्पित करते रहने से प्रेम तथा उपासना में वृद्धि होती है, चैत्य पुरुष सामने आता है ।

— श्रीअरविन्द

अतिमानसिक सत्य जानना चाहिये... और वह पूरी तरह से, सर्वांगीण रूप में अभिव्यक्त होगा।" हाँ, हाँ....।

और चीज हो गयी।

(लम्बा मौन)

व्यक्तिगत चेतना वापस आ गयी : एक तरह के सीमाबन्धन का भाव, दर्द का सीमाबन्धन; कोई व्यक्ति नहीं उसके बिना।

'विजय' के बारे में सुनिश्चित, हम फिर से रास्ते पर बढ़ चले।

आकाश 'विजय' के गीतों से गूंज रहे हैं।

केवल दिव्य सत्य का ही अस्तित्व है; केवल वही अभिव्यक्त किया जायेगा। आगे बढ़ो!

हे प्रभो, परम विजेता! तेरी जय हो!

(मौन)

अब चलो, काम पर।

धैर्य, सहिष्णुता, पूर्ण समता, और निरपेक्ष श्रद्धा।

(मौन)

अगर मैं अनुभूति के साथ तुलना करूं तो जो मैं कह रही हूं वह कुछ नहीं, कुछ नहीं, शब्दों के सिवा बिलकुल कुछ भी नहीं।

और हमारी चेतना एक ही है, एकदम परम प्रभु की चेतना के समान है। कोई भेद न था, कोई भेद न था।

हम तत् हैं, हम तत् हैं, हम तत् हैं।

(मौन)

बाद में मैं ज्यादा अच्छी तरह बताऊंगी। यन्त्र अभी तक तैयार नहीं है। यह तो बस आरम्भ है।

बाद में माताजी ने जोड़ा :

अनुभूति कम-से-कम चार घण्टों तक चली।

माताजी के वचन, भाग-३, पृ.४३३ —— श्रीमाँ

१३ नवम्बर १९५८ की अनुभूति

सब पूछो, तो, तुम विरोधी शक्तियों के चंगुल से तब तक नहीं छूटते जब तक कि तुम हमेशा के लिए निम्न गोलार्द्ध के ऊपर, प्रकाश में न निकल आओ। और वहां "विरोधी शक्तियां" यह कथन अपना अर्थ खो बैठता है; वहां केवल प्रगति करने की शक्तियां होती हैं ताकि वे तुम्हें प्रगति करने को विवश करें। लेकिन तुम्हें चीजों को इस तरीके से देखने के लिए निम्न गोलार्द्ध से बाहर निकलना होगा; क्योंकि नीचे वे भागवत योजना का विरोध करने के लिए बहुत वास्तविक हैं।

पुरानी परम्पराओं में कहा जाता था कि तुम अपने शरीर को छोड़े बिना, परम उद्‌गम में वापस लौटे बिना, बीस दिनों से अधिक-उस उच्चतर अवस्था में नहीं जी सकते। अब यह बात सच्ची नहीं रही।

पूर्ण सामंजस्य की ठीक यही अवस्था जो सभी प्रहारों के परे है, अतिमानसिक उपलब्धि के साथ सम्भव होगी। यही वह अवस्था है जो उन सभी के लिए चरितार्थ होगी जो अतिमानसिक रूपान्तर के लिए निर्दिष्ट हैं। विरोधी शक्तियां यह अच्छी तरह से जानती हैं कि अतिमानसिक जगत् में वे स्वतः विलीन हो जायेंगी : कोई उपयोग न रहने के कारण कुछ भी किये बिना, केवल अतिमानसिक शक्ति की उपस्थिति से, वे विघटित हो जायेंगी। इसीलिए वे सब चीजों को, सभी चीजों को नकारती हुई क्रोध में इधर से उधर दौड़ती फिर रही हैं।

लेकिन दोनों जगतों के बीच की कड़ी अभी तक नहीं बनी है-वह बन रही है। तीन फरवरी की अनुभूति का यही अर्थ था, मुख्य रूप से इन दोनों जगतों के बीच सम्बन्ध जोड़ना था। क्योंकि वस्तुतः ये दोनों जगत् मौजूद हैं - एक के ऊपर एक नहीं बल्कि एक के अन्दर दूसरा दो भिन्न आयामों में, लेकिन दोनों में कोई सम्पर्क नहीं। वे बिना एक साथ मिले एक-दूसरे को ढक लेते हैं। ३ फरवरी की अनुभूति में मैंने कुछ यहां के और कुछ बाहर के लोगों को देखा जो अपनी सत्ता

पुरुषोत्तम चेतना परम पुरुष की चेतना है । मनुष्य अहंकार के नष्ट हो जाने पर तथा अपने वास्तविक सार तत्व को सिद्ध कर लेने पर इस चेतना में निवास कर सकता है ।

— श्रीअरविन्द

के एक भाग में अभी से अतिमानसिक जगत् के सदस्य हो चुके हैं; लेकिन बीच में कोई सम्पर्क नहीं, कोई सम्मिलन नहीं। विश्व के इतिहास में वह समय अभी-अभी आया है जब इन दोनों के बीच नाता जोड़ना होगा।

पांच नवम्बर की अनुभूति दोनों जगतों के बीच कड़ी के निर्माण में एक नया चरण थी। वस्तुतः मैं अतिमानसिक सृष्टि के एकदम मूल में प्रक्षिप्त की गयी थी :वह सारा ऊष्मा भरा स्वर्ण, वह जीवन्त विस्मयकारी शक्ति,वह परमोच्च शक्ति। मैंने एक बार फिर से देखा कि वे मूल्य जो इस अतिमानसिक जगत् में प्रचलित हैं, उनका हमारे नीचे के मूल्यों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यहां तक कि सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण मूल्यों का भी, यहां तक कि वे मूल्य भी जिन्हें हम निरन्तर भागवत उपस्थित में रहते हुए एकदम दिव्य समझते हैं, उनका भी कोई सम्बन्ध नहीं होता। सब कुछ एकदम अलग है।

न केवल पूजा और परम प्रभु के प्रति समर्पण की अवस्था में बल्कि यहां तक कि हमारे तादात्म्य की अवस्था में भी, तादात्म्य की कोटि भिन्न होती है । यह इस पर निर्भर करता है कि हम इस ओर हैं, निम्न गोलार्द्ध में प्रगति कर रहे हैं या इसे पार करके दूसरे जगत् में, दूसरे गोलार्द्ध, उच्चतर गोलार्द्ध में निकल आये हैं।

उस क्षण परम प्रभु के साथ मेरा जिस तरह का सम्बन्ध था या वह जिस कोटि का था वह उस सम्बन्ध से एकदम भिन्न था जैसा हमारा उनके साथ यहां होता है, और यहां तक कि तादात्म्य की कोटि भी भिन्न थी। निम्न गतिविधियों को तो तुम बहुत अच्छी तरह समझ सकते हो कि वे भिन्न हैं, लेकिन वह हमारी यहां की अनुभूति की पराकाष्ठा थी, वह तादात्म्य जिसमें परम प्रभु ही रहते हैं, और शासन करते हैं। हां तो, जब हम इस निम्न गोलार्द्ध में होते हैं और जब हम अतिमानसिक जीवन में होते हैं तो दोनों में वे एकदम भिन्न तरीके से रहते, शासन करते और जीते हैं। और उस क्षण अनुभूति को जिस चीज ने तीव्रता दी वह यह थी कि मैंने अस्पष्ट रूप में चेतना की इन दोनों अवस्थाओं को एक साथ देखा। यह प्रायः ऐसा है मानों अपने-आप में परम प्रभु ही भिन्न हैं, यानी उनकी जो अनुभूति हमें होती है वह भिन्न

प्रेम आनन्द की आत्मा की एक तीव्र आत्म अभिव्यक्ति है ।...

— श्रीअरविन्द

है। और फिर भी दोनों अवस्थाओं में परम प्रभु के साथ संपर्क था। हां शायद, हम उन्हें कैसे देखते हैं, देखी हुई वस्तु को कैसे अनूदित करते हैं इसमें भेद है; लेकिन अनुभूति की कोटि अलग होती है।

दूसरे गोलार्द्ध में एक ऐसी तीव्रता, एक ऐसी बहुलता है जो अपने आपको एक ऐसी शक्ति के द्वारा अभिव्यक्त करती है जो यहां की शक्ति से भिन्न है। इसे कैसे समझाया जाये? नहीं समझाया जा सकता। स्वयं चेतना का गुण बदला हुआ प्रतीत होता है। हम यहां जिस शिखर तक चढ़ सकते हैं यह कोई उससे भी ऊपर की चीज नहीं है, वह एक कदम आगे नहीं है : यहां हम अन्त में, शिखर पर हैं। यह कोटि ही भिन्न है, इस अर्थ में कि वहां एक बहुलता, एक समृद्धि, एक शक्ति है। हमारे तरीके से यह एक अनुवाद है, लेकिन कोई ऐसी चीज है जो हमारी पकड़ में नहीं आती — यह सचमुच चेतना का नया उल्टाव है।

जब हम आध्यत्मिक जीवन जीना शुरू करते हैं, तो चेतना में एक उल्टाव आ जाता है, जो हमारे लिए इस बात का प्रमाण है कि हमने आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर लिया है; हां, तो जब हम अतिमानसिक जगत् में प्रवेश करते हैं तो चेतना का एक और उल्टाव होता है।

इसके अतिरिक्त, शायद हर बार जब नया जगत् खुलेगा, तो फिर से इसी तरह का नया उलटाव होगा। अतः यहां तक कि हमारा आध्यात्मिक जीवन भी, जो साधारण जीवन की तुलना में एकदम से इतना अलग है और अलग दीखता भी है कि दोनों के गुण लगभग विपरीत हैं।

हम इसे यूं कह सकते हैं(लेकिन यह बहुत अयथार्थ, घटिया बल्कि उससे भी बढ़कर विकृत है) :यह ऐसा है मानों हमारा सारा आध्यात्मिक जीवन चांदी से बना था जबकि अतिमानसिक सोने से बना है, मानों सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन यहां नीचे, चांदी का स्पन्दन था, आभाहीन नहीं, लेकिन जब एक प्रकाश ही था, एक ऐसा प्रकाश जो शिखर तक जाता है, एकदम शुद्ध प्रकाश, शुद्ध और तीव्र; लेकिन दूसरे

अतिमानसिक शक्ति ही मन, प्राण तथा शरीर का रूपान्तरण करती है, सच्चिदानन्द की चेतना नहीं जो हर चीज को तटस्थ रूप से अवलम्ब देती है ।

— श्रीअरविन्द

जीवन में, अतिमानसिक जीवन में, एक समृद्धि और एक शक्ति है और सारा भेद इसी में है। हमारी चैत्य सत्ता का यह सारा आध्यात्मिक जीवन और हमारी वर्तमान चेतना जो इतनी ऊष्माभरी, इतनी भरपूर, इतनी विलक्षण, साधारण चेतना के सामने, इतनी चमकदार दीखती है, परंतु यह सारी चमक नये जगत् की भव्यता के सामने निस्तेज पड़ जाती है।

इस तथ्य को इस तरीके से बहुत अच्छी तरह समझाया जा सकता है: उल्टावों की एक क्रमिक शृंखला, एक-के-बाद-एक, सृष्टि की नित्य नयी समृद्धि लाती है और इस तरह जो कुछ पहले था वह वर्तमान की तुलना में निस्तेज प्रतीत होता है। हमारे साधारण जीवन की तुलना में जो हमारे लिए बड़ी महान समृद्धि होती है, वह चेतना के इस नये उलटाव की तुलना में बहुत फीकी लगती है। मेरी अनुभूति यही थी।

पिछली रात जब मैंने यह जानने की कोशिश की कि कमी किस चीज की है ताकि मैं तुम लोगों को पूरी तरह से, सचमुच तुम्हारी कठिनाइयों से उबार सकूं, तो इस प्रयास ने मुझे उस बात की याद दिला दी जो मैंने तुम्हें परम शक्ति के बारे में बतायी थी, रूपान्तर की शक्ति, उपलब्धि की सच्ची शक्ति, अतिमानसिक शक्ति। एक बार तुम वहां प्रवेश कर लो, उस अवस्था तक उठ जाओ, तो तुम देखोगे कि यहां हम जो हैं उसकी तुलना में वह सचमुच सर्वशक्तिमान् है। तो मैंने फिर से एक बार देखा, और एक साथ दोनों अवस्थाओं को अनुभव किया।

लेकिन जब तक यह उपलब्धि पूर्ण तथ्य के रूप में चरितार्थ न हो जाये तब तक वह प्रगति की क्रिया ही रहेगी —– प्रगति की क्रिया, एक चढ़ाई : तुम प्राप्त करते हो, तुम्हारा क्षेत्र बढ़ता जाता है, तुम अधिकाधिक ऊपर चढ़ते हो; यह तब तक होता है जब तक कि नया उलटाव न आये? यह ऐसा है मानों वहां सब कुछ फिर से करने की आवश्यकता होती है। यहां नीचे की अनुभूति की वह पुनरावृत्ति होती है —– उसे वहां दोहराया जाता है।

और हर बार तुम्हें यह आभास होता है कि तुम चीजों की सतह पर रहे

भागवत कृपा साधना में सफलता के लिए अनिवार्य है, परन्तु अभ्यास ही कृपा के अवतरण को तैयार करती है ।

— श्रीअरविन्द

हो। यह एक ऐसा आभास है जो बार-बार होता है। हर एक नयी विजय पर तुम्हें यह सतह पर, उपलब्धि की सतह पर, समर्पण की सतह पर, शक्ति की सतह पर ही रहा हूँ — वह केवल चीजों की सतह थी, अनुभूति की सतह थी।" उस सतह के पीछे एक गहराई है और जब तुम गहराइयों में उतरते हो केवल तभी सच्ची चीज को छू सकते हो। औऱ हर बार वही अनुभूति होती है । जो गहराई प्रतीत होती थी वह सतह बन जाती है, सतह, अपने सभी अर्थों में, यानी जो अयथार्थ, कृत्रिम, एक कृत्रिम अनुकृति, एक ऐसी चीज जो यह आभास देती है कि यह सचमुच जीवन्त नहीं है; यह नकल है, बनावटी है, एक चित्र है, छाया है लेकिन स्वयं वस्तु नहीं है। तुम किसी दूसरे क्षेत्र में निकल जाते हो और ऐसा भान होता है कि तुमने 'स्रोत्र' और 'शक्ति' को, चीजों के परम 'सत्य' को पा लिया; और फिर, यह स्रोत्र, यह शक्ति, यह सत्य नयी उपलब्धि की तुलना में छाया, कृत्रिमता, अनुकृति बन जाते हैं।

इस बीच हमें सचमुच यह जानना चाहिये कि अभी तक हमें कुंजी प्राप्त नहीं हुई है; यह हमारी पहुंच के अन्दर नहीं है। या हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि वह कहां है, और हमें बस एक ही चीज करनी है: पूर्ण समर्पण, जिसके बारे में श्रीअरविन्द ने बतलाया है, चाहे जो भी हो, यहां तक की रात्रि के अन्धकार में भी, भागवत संकल्प के प्रति पूर्ण आत्मदान।

रात्रि भी है, सूर्य भी है, रात्रि और सूर्य, फिर से रात्रि, कई रात्रियां, लेकिन तुम्हें समर्पण के इस संकल्प से चिपके रहना होगा, उसके साथ ऐसे चिपके रहना होगा मानों तुम तूफान में हो और सभी चीजों को परम प्रभु के हाथों में सौंप देना होगा जब तक कि पूर्ण विजय-दिवस न आ जाये जब 'सूर्य' सदा - सर्वदा चमकता रहेगा।

माताजी के वचन, भाग ३ : पृ.४०७ — श्रीमाँ

योग में प्राय: सभी घटनाएं अनुभूति शब्द में आ जाती हैं । लेकिन जब कोई चीज स्थायी हो जाती है तब वह अनुभूति न रह कर सिद्धि का भाग बन जाती है । उदाहरण के लिए जब शान्ति आती है, जाती है, रहती है, तब वह अनुभूति है । जब वह स्थिर हो जाती है, यानी जाती नहीं तब वह सिद्धि कहलाती है ।

— श्रीमाँ

अतिमानस और अधिमानस

श्रीअरविन्द का काम है धरती का अद्‌भुत रूपान्तर ।

मन के ऊपर सचेतन सत्ता के कई स्तर हैं । उनमें वास्तविक दिव्य जगत वह है जिसे श्रीअरविन्द अतिमानस कहते हैं । यह 'सत्य' का जगत है । लेकिन बीच में देवताओं का जगत है जिसे श्रीअरविन्द अधिमानस कहते हैं । अभी तक हमारे संसार पर अधिमानस का राज्य रहा है । ज्योतिर्मय चेतना में यही सबसे ऊँचा स्तर है जहाँ तक मनुष्य पहुँच पाया है । इसी को परम प्रभु मान लिया गया है और जो लोग वहाँ पहुँचे उन्होंने क्षण भर के लिए भी उसके परम सत्य चेतना होने में शंका नहीं की, क्योंकि साधारण मानव चेतना के लिए उसकी भव्यता और उसकी दीप्तियाँ इतनी महान हैं कि वह उन्हें देख कर चौंधिया जाता है और मान लेता है कि यही सत्य का शिखर है । लेकिन तथ्य यह है कि अधिमानस सच्चे भगवान से बहुत नीचे है । वह 'सत्य' का स्वधाम नहीं है । यह केवल निर्माताओं का और उन सर्जक शक्तियों और देवों का लोक है जिनके आगे लोग इतिहास के आरम्भ से झुकते आये । और वास्तविक भगवान के अभिव्यक्त न होने तथा पार्थिव प्रकृति को रूपान्तरित न करने का कारण ठीक यही है कि अधिमानस को अतिमानस माना गया है । वैश्व देवता पूरी तरह "सत्य चेतना" में नहीं रहते । वे उसके साथ सम्पर्क में होते हैं और उनमें से हरेक उसकी महिमा के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है ।

निस्सन्देह जगत के इतिहास में अतिमानस ने भी क्रिया की है किन्तु अधिमानस के द्वारा ही ।... अधिमानस अविद्या का क्षेत्र नहीं है लेकिन वह 'उच्च' और 'निम्न' के बीच सीमारेखा है क्योंकि सम्भावनाओं की लीला विभक्त न सही, पृथक चुनाव की सम्भावना वस्तुओं के 'सत्य' से भटकने को सम्भव बना देती है । इसीलिए अधिमानस में मानव को दिव्य प्रकृति में रूपान्तरित करने की क्षमता न तो हो सकती है, न है । उसके लिए अतिमानस ही एक मात्र साधन है ।

(मातृवाणी, खण्ड ३, पृ. १६४-६५) — श्रीमाँ